सबला

वर्ष 3 : अंक 7-8 सेवाग्राम विकास संस्थान, नई दिल्ली अक्तूबर-नवंबर, 1990

इस अंक में

हमारी बात	1
यही संचार है : हमारी बात आप तक आपकी बात हम तक —सुहास कुमार	3
जो दीवार पर लगे-लगे बात कहे : पोस्टर —कमला भसीन	7
नारी आंदोलन में गीतों की भूमिका —'जागोरी' समूह	9
दीवारें नहीं बोलतीं —सुहास कुमार	11
लड़कियों के अधिकार	12
मज़हबी कट्टरता के खिलाफ़ औरतों की आवाज़ —कमला भसीन	13
साथिन मेला राज्य इदारा, जयपुर	16
गुड्डो किसी से कम नहीं चित्रांकन : तापोसी घोषाल	18-19
गए देखने साथिन मेला —शशी चौहान	20
बिटिया आई है—गीत —कृष्णा कुमारी सिंह	21
कठपुतली का करतब	22
अनपढ़ की लाचारी—नाटक —भारत ज्ञान विज्ञान समिति	24
आज मेरा गाने का मन है	26
शिविर और कार्यशाला —सुहास कुमार	27
नाटक—एक मनोरंजक माध्यम	29
अनपढ़ औरतों ने वीडियो फिल्म बनाना सीखा	31
एक अंधी लड़की से बलात्कार —तारा आहलूवालिया	33
आप से हम तक : पाठकों के पत्र	35

आवरण चित्र : तापोसी घोषाल

सहयोग मंडल

कमला भसीन

सुहास कुमार

ज्ञानेंद्र प्रसाद जैन

'जागोरी' समूह

प्रतिभा गुप्ता

ग्रामीण बहनों की द्विमासिक पत्रिका—शिक्षा विभाग, मानव संसाधन मंत्रालय, भारत सरकार और यूनीसेफ, नई दिल्ली द्वारा अनुदानप्रदत्त; डाक्टर शारदा जैन (सेवाग्राम विकास संस्थान, 1 दरियागंज, नई दिल्ली-110 002) द्वारा संपादित व प्रकाशित तथा इन्द्रप्रस्थ प्रेस (सी.बी.टी.), नेहरू हाउस, 4 बहादुरशाह जफर मार्ग, नई दिल्ली-110002 में मुद्रित ।

हमारी बात

'सबला' एक कड़ी है जो हमें आप से जोड़ती है। इसके ज़रिए हम अपनी बात आप तक पहुंचाने की कोशिश करती हैं। जब बहनों के पत्र हमें मिलते हैं तो लगता है कि हमारी बात आप तक पहुंची। 'सबला' ने आपको हमसे जोड़ा।

राष्ट्रीय स्तर पर औरतों को एक दूसरे से जोड़ने और संगठित करने के लिए 28 से 31 दिसंबर 1990 को कालीकट (केरल, दक्षिण भारत) में एक अखिल भारतीय महिला सम्मेलन होगा। सम्मेलन में देश के कोने-कोने से आई हज़ारों बहनें साथ मिल कर विभिन्न मुद्दों पर चर्चा करेंगी। बहनें अपने सुख-दुख बांटेंगी, दूसरों के अनुभवों से सीखेंगी, नई जानकारी हासिल करेंगी। ऐसे तीन सम्मेलन पहले हो चुके हैं, दो बंबई में और एक पटना में। यह चौथा सम्मेलन होगा।

साथ मिल-बैठ कर चर्चा करना, एक की बात दूसरे तक पहुंचाने का बढ़िया साधन है। ऐसी चर्चाएं बड़े स्तर पर तो कभी-कभार ही आयोजित हो पाती हैं, लेकिन छोटे स्तरों पर अक्सर होती हैं। यदि आप गांव स्तर पर काम करती हैं तो 15-20 दिन में एक बार ज़रूर आयोजित कर सकती हैं। चर्चा का मुख्य मुद्दा पहले से तय कर सब बहनों को बता दें जिससे वे उस बारे से सोच कर आएं। चर्चा के दौरान मुख्य मुद्दे से हट कर कई अन्य सवाल उठेंगे। उन पर भी बातचीत करें।

देश के अलग-अलग हिस्सों में कई महिला समूह सक्रिय हैं। उनके अनुभवों से बहनें और अन्य समूह सीख सकते हैं। इन अनुभवों को दूसरों तक पहुंचाने के कई तरीके हैं। 'सबला' जैसी पत्रिकाएं यह काम बखूबी करती हैं। वीडियो फिल्मों और टेप-रिकार्डरों के ज़रिए भी इन अनुभवों को दूर-दूर पहुंचाया जाता है। अब तो अनपढ़ औरतें भी वीडियो फिल्में बना कर अपनी समस्याओं को प्रभावशाली ढंग से उजागर करती हैं (पढ़िए लेख 31 पृष्ठ पर)।

'सबला' के इस अंक में हमने उन सब माध्यमों की चर्चा की है जिनके ज़रिए जानकारी का संचार होता है। पारंपरिक तरीकों, जैसे कठपुतली के खेल, लोकगीत, मेले, नाटक व नौटंकी से लेकर नये तरीकों जैसे फ्लैश कार्ड, सुनने के कैसेट और वीडियो फिल्में आदि सभी के बारे में बताया है।

नई जानकारी के संचार के लिए बच्चे भी अच्छा माध्यम हैं। किसी भी परिवार तक पहुंचने के लिए बच्चे बहुत कारगर साबित हुए हैं। बच्चों की कही बात का मां-बाप पर काफी असर पड़ता है।

सामाजिक जागरुकता और बदलाव लाने के लिए ज़रूरी है कि नये विचारों का लेन-देन और फैलाव हो। अक्सर बहुत से प्रेरणात्मक कामों व अनुभवों की जानकारी आम लोगों तक नहीं पहुंचती। जब किसी सुदूर गांव के लोग जान जाते हैं कि अन्य समूह बदलाव के काम में जी-जान से जुटे हैं तो उन्हें प्रेरणा मिलती है, उनमें हिम्मत आती है।

हमारा बहनों से अनुरोध है कि उन्हें जो भी नई जानकारी मिले उसे अन्य बहनों तक ज़रूर पहुंचाएं।

संपादिका

औरत की मजबूर खामोशी जुल्म का आधार है

इस मजबूरी को छोड़ो
इस खामोशी को तोड़ो

हमारी बात आप तक आपकी बात हम तक यही संचार है

सुहास कुमार

संचार का मतलब है अपनी बात दूसरों तक पहुंचाना। इसमें दो पक्ष होते हैं। एक कहने वाला, दूसरा सुनने वाला। सुनने वाले की प्रतिक्रिया जानना जरूरी है, क्योंकि जब तक हम यह नहीं जानेंगे हमें कैसे पता चल पाएगा कि बात सुनने वाले तक पहुंची या नहीं। मौजूदा संदर्भ में जब तक हम यह नहीं जानेंगे कि आपको संचार का मतलब समझ में आया या नहीं, तब तक संचार अधूरा रहेगा।

हमारी बात आप तक, आपकी बात अन्य तक और उनकी बात हम तक पहुंचे यह लगातार चलने वाला सिलसिला है और जिंदगी का जरूरी हिस्सा है। हम जब किसी से बात करती हैं तो हमारी कोशिश रहती है कि हमारी बात उन तक पहुंचे।

इसलिए हमें ऐसे शब्द और ऐसी भाषा इस्तेमाल करनी है जिससे सुनने वाला वही सुने जो हमने कहा।

संचार तीन तरह हो सकता है :—

1. दो व्यक्तियों की आपसी बातचीत।
2. थोड़े लोगों या छोटे समूह के साथ बातचीत।
3. बड़ी भीड़ या समूह को संबोधन।

दो लोगों की आपसी बातचीत आपसी संचार है। यह तरीका सबसे अच्छा है, क्योंकि इसमें दोनों का पूरा ध्यान एक-दूसरे पर होता है। सुनने वाला कहने वाले की बात का उत्तर तुरंत दे सकता है और कहने वाला अपनी बात समझाकर कह सकता है। सुनने वाला अपनी शंकाओं व कठिनाइयों को बता सकता है।

छोटे समूह में भी बातचीत हो सकती है और सफल हो सकती है।

पर अपार जन समूह को संबोधन (संचार) एकतरफा होता है। जन सभा में भाषण को जन-संचार कहते हैं।

नये माध्यम

ज्यों-ज्यों विज्ञान ने तरक्की की संचार के नये माध्यम निकलते गए, जैसे अखबार, पुस्तक, प्रदर्शनी, चलचित्र, रेडियो, टेलीविजन आदि।
जन-संचार के भी लाभ हैं। दुनिया के किस कोने में क्या हो रहा है, घर बैठे हमें इन माध्यमों से मालूम हो जाता है। इसमें तुरंत सवाल नहीं किया जा सकता, पर पत्र लिखकर अपनी बात पहुंचाई जा सकती है।

संचार का एक अन्य महत्वपूर्ण अंग है कि अपनी बात इस ढंग से कही जाए कि सुनने वाला उसी रूप में उसे समझे और ग्रहण करे। इस संदर्भ में चित्रों, स्लाइडों, फिल्मों और चलचित्रों को समझना होगा। पोस्टर, कार्ड, चार्ट, फ्लिप चार्ट, फ्लैशकार्ड, फलेनेल-ग्राफ आदि इन्हीं में शामिल हैं।

जब कोई बात मुंह से न कही जाए और कागज़ पर लिखी जाए तो उसे आंखों से ग्रहण किया जाता है। ऐसे शब्दचित्रों में किताबें, पत्र-पत्रिकाएं और अखबार आते हैं।

जब बात बताने में एक से ज्यादा माध्यमों का इस्तेमाल किया जाए तो समझाना और समझना ज्यादा आसान हो जाते हैं। चूंकि इंसानी जीवन काफी जटिल हो गया है, हमें अपनी बात समझने-समझाने के लिए नये-नये साधनों का उपयोग करना जरूरी हो गया है। वे माध्यम ज्यादा असरदार माने गए हैं जिनमें आंखों और कानों दोनों का इस्तेमाल होता है। इसलिए टी. वी. और फिल्मों का असर ज्यादा और जल्दी होता है। किताब या पत्रिका के साथ में चित्र होने से बात ज्यादा साफ हो जाती है।

दो माध्यमों का उपयोग करने वाले संचार माध्यम जैसे नाटक, स्किट, कठपुतली, संगीत, नृत्य आदि भी हैं। इनमें संदेश को रोचक ढंग से पहुंचाने की कोशिश की जाती है।

पोस्टर

इसका उद्देश्य कम शब्दों और चित्रों के जरिए संदेश दूसरों तक पहुंचाना है। संदेश अच्छे नारे या छोटे वाक्यों में लिखा जाता है और नारे के लिए उचित चित्र भी बनाया जाता है। फिर उसका ले-आउट तैयार किया जाता है, यानी कहां चित्र होगा और कहां वाक्य, यह महत्वपूर्ण चरण है। रंगीन पोस्टर होना जरूरी नहीं, पर रंगीन पोस्टर अधिक ध्यान खींचता है और सुंदर लगता है।

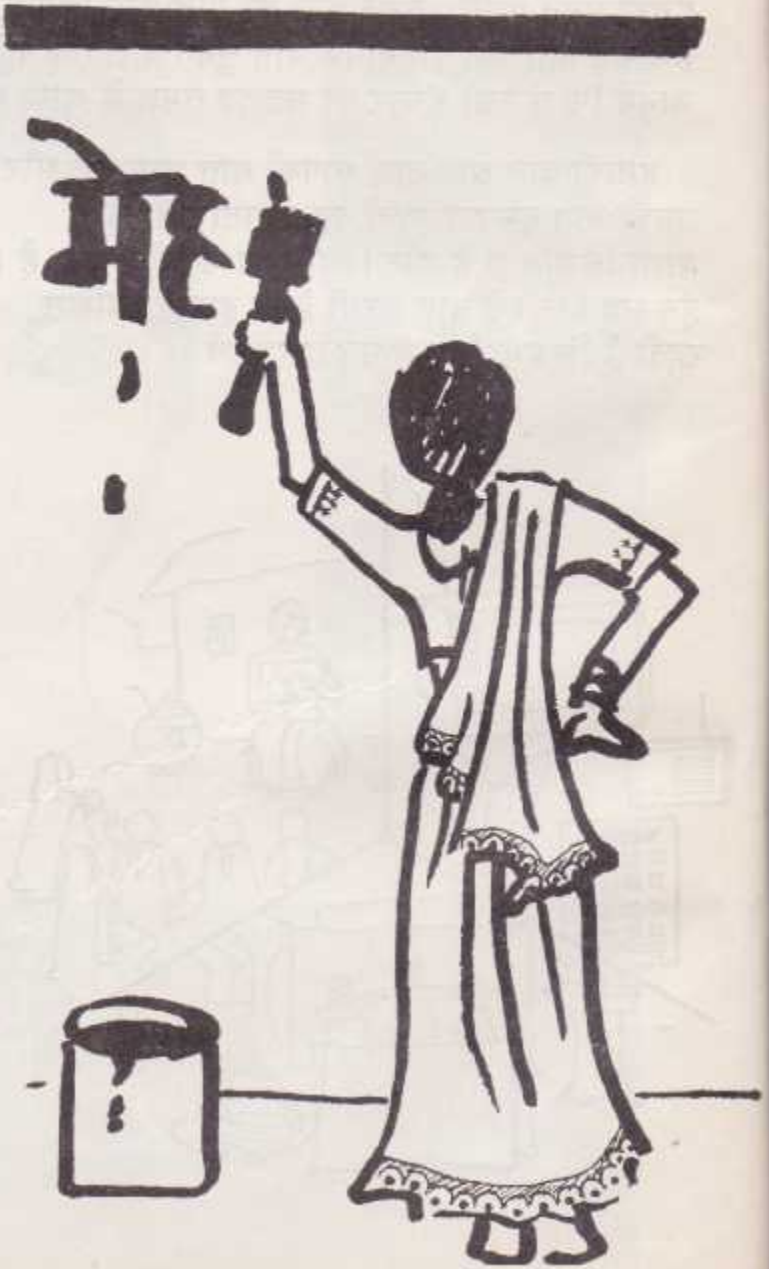

पोस्टर में शब्दों और चित्रों की आकृति जितनी सादा हो उतना अच्छा होगा। संदेश जितना छोटा होगा उतना प्रभावकारी होगा। शब्दों और चित्रों में सीधा संबंध रहना चाहिए। किसी शब्द को तोड़कर न लिखा जाए और रंगों का प्रयोग समझदारी से किया जाए।

इस पोस्टर में (पृष्ठ 4) बहुत कम शब्दों में केवल शरीर की रेखाओं के जरिए कितना कुछ कह डाला गया है। पोस्टर की यह सुंदर मिसाल है।

औरत की मेहनत, पसीने की बूंदों का कूड़ेदान में जाना (काम की व्यर्थता), खड़े होने के ढंग से थकावट का एहसास, ये सब हम जैसे एक नजर में महसूस कर लेते हैं। हमें औरत का चेहरा देखने की भी जरूरत नहीं। चेहरा स्वतः उभर आता है।

चार्ट

चार्टों में भी चित्रों, शब्दों और अंकों का प्रयोग किया जाता है। संदेश को ज्यादा समझाकर बताया जाता है। चार्ट का प्रयोग 20-25 से ज्यादा बड़े समूह के सामने नहीं करना चाहिए। चार्ट पर रोशनी ठीक पड़नी चाहिए तथा वह थोड़ा ऊंचाई पर होना चाहिए जिससे समूह के सब लोग उसे देख सकें।

चार्ट में दी जाने-वाली सब सामग्री पहले जमा कर लें। उसे संक्षेप में लिख लें। फिर जहां शब्दों के बजाए चित्र उपयोग में लाए जा सकें लाएं। शब्दों और चित्रों को उचित क्रम दें।

चार्ट को एक शीर्षक भी दें। इसमें कम शब्द ज्यादा मोटे लिखे जाते हैं। रंगों की सहायता से इन्हें ज्यादा आकर्षक बनाया जा सकता है। चारों ओर लगभग 2 सें.मी. का हाशिया भी छोड़ें।

शब्दों व चित्रों की बनावट सादी हो और रंगों का चुनाव सही हो। कोई शब्द तोड़कर न लिखें।

शब्दों और चित्रों को इतना बड़ा बनाएं कि 2 से 2½ मीटर की दूरी से आसानी से पढ़े व देखे जा सकें। चार्ट में संदेश ठूंस-ठूंस कर नहीं भरना चाहिए। यदि चार्ट नवसाक्षरों के लिए है तो शब्द कम और चित्र ज्यादा हों।

फ्लैश कार्ड

20×30 सें.मी. माप के 10-12 कार्डों के सेट को फ्लैश कार्ड कहते हैं। इन पर क्रम से कुछ चित्र बनाए जाते हैं। जब इन्हें एक के बाद एक दिखाया जाता है तब उनसे एक संदेश उभरता है। संदेश कहा भी जा सकता है, पर इन कार्डों से ज्यादा रुचिकर ढंग से कहा जा सकता है। सुनने वाले का ध्यान बंध जाता है।

इन्हें नई जानकारी देने के लिए 20 से 30 लोगों के समूह में इस्तेमाल किया जा सकता है। कार्डों को बाएं हाथ में सीने से टिका कर पकड़ें और तस्वीरें सामने वालों को दिखाएं। साथ में तस्वीरों से संबंधित संदेश कहती जाएं। अगर संदेश कहानी की तरह है तो आवाज़ में उतार-चढ़ाव भी रखें। इससे नाटकीयता आती है और सुनने वालों पर ज्यादा असर पड़ता है।

सब कार्ड दिखाने के बाद उन पर चर्चा करना ज़रूरी है। ज्यादा जानकारी बाद में ही दी जा सकेगी।

फ्लैश कार्ड कैसे बनाएं ?

पहले अपने संदेश को कहानी का रूप दें। कहानी सच्ची घटना या मन से बनाई भी हो सकती है। कहानी की मूल बातों को 5-10 भागों में बांट लें। हर भाग के लिए एक या दो चित्र बना लें। कार्डों का माप 20×30 सें.मी. रखें। चित्र सरल होने चाहिएं और चित्रों के पात्रों की वेशभूषा कहानी के अनुरूप होनी चाहिए। ऐसा न हो कि पात्र गांव के हों और उनकी वेशभूषा शहरी हो।

हर कार्ड के पीछे दो-चार लाइनें लिखी होंगी तो कहानी सुनाने में आसानी होगी। जब कार्डों का प्रयोग न हो तब उन्हें बांधकर लिफाफे में रख दें।

प्रदर्शन

किसी चीज़ को बनाकर दिखाने को प्रदर्शन कहते हैं। प्रदर्शन सिलाई, कढ़ाई या अन्य कलात्मक चीज बनाने का हो सकता है या ज़रूरत की चीज जैसे सोख्ता गड्ढ़ा या शौचालय भी हो सकता है।

सब सामान एक जगह इकट्ठा कर लें। जो चीजें तैयार करनी हैं उन्हें तैयार कर लें। लोगों को ऐसी जगह बैठाएं जहां से सब उसे ठीक से देख सकें।

समूह बहुत बड़ा नहीं होना चाहिए। 15-20 या ज्यादा से ज्यादा 30 लोगों का हो। जहां संभव हो लोगों से काम कराएं। भागीदारी से लोगों की रुचि बढ़ेगी और सीखने में मदद मिलेगी।

प्रदर्शन के बाद सवाल पूछने को ज़रूर कहें। तभी पता चलेगा कि वे कुछ सीखे हैं या नहीं। लोगों के घर जाकर भी उसे करने के लिए कहना होगा।

कठपुतली और नाटक भी अपनी बात कहने के अच्छे माध्यम हैं।

चर्चा या बातचीत

संचार का कोई भी माध्यम बातचीत की जगह नहीं ले सकता। सब माध्यम इसके पूरक हैं और सहायता के लिए इस्तेमाल किए जाने चाहिएं।

अन्य माध्यम न भी हों तो जहां कुछ लोग जुड़ें वहां चर्चा कर उन तक अपनी बात पहुंचा सकते हैं। उनकी बात भी हम तक पहुंचेगी। संचार की प्रक्रिया तभी पूरी होगी जब कहने और सुनने वालों के बीच एक संवाद पैदा हो। जब अनेक लोगों के विचार पता लगते हैं तब समस्या उभर कर सामने आती है। समस्या के क्षेत्र की जानकारी मिलती है और मिल-बैठ कर उसका हल भी निकाला जा सकता है। समूह बहुत बड़ा होगा तो सबको अपनी-अपनी बात कहने का मौका नहीं मिल पाएगा।

समूह में एक व्यक्ति को चर्चा संयोजित करने का बीड़ा उठाना होगा। उसका काम यह देखना होगा कि बातचीत विषय के इर्द-गिर्द ही केंद्रित रहे। मुख्य मुद्दे से हटे नहीं। सबको अपनी बात कहने का अवसर मिले। कोई एक ही न बोलता रहे। चर्चा में हर किसी के विचार महत्वपूर्ण होते हैं। चर्चा के नेता का यह भी काम है कि वह समझदार लोगों को बोलने को कहे। चर्चा का लेखा-जोखा भी किसी को रखना होगा। यह काम किसी अन्य के सुपुर्द करना चाहिए। चर्चा की रपट कौन लिखेगा इसका फैसला भी पहले हो जाना चाहिए ताकि वह सब मुख्य बिंदु नोट करता रहे।

संचार के माध्यम का चुनाव बहुत सोच-समझकर करना होगा। किसी एक बात के लिए पोस्टर ठीक होगा तो दूसरी के लिए चार्ट। किसी के लिए गीत तो किसी के लिए नाटक या कठपुतली। गंभीर विषयों के लिए शायद चर्चा ठीक रहेगी। मुख्य बात यह है कि संदेश सही और प्रभावशाली ढंग से पहुंचे।

साभार—यूनिसेफ और लेडी इरविन कालेज, नई दिल्ली
'आप से लोगों तक'

जो दीवार पर लगे-लगे बात कहे—पोस्टर

कमला भसीन

शहरों और गांवों की दीवारों पर आपने हाथ-दो हाथ बड़े कागज़ चिपके ज़रूर देखे होंगे जिन पर कोई तस्वीर बनी होती है और कुछ लिखा होता है या सिर्फ कुछ लिखा होता है। इन्हीं को पोस्टर कहते हैं। अपनी बात लोगों तक पहुंचाने के लिए पोस्टरों को जगह-जगह चिपका दिया जाता है। आते-जाते लोग इन्हें देखते और पढ़ते हैं और पोस्टर बनाने और चिपकाने वालों का संदेश लोगों तक पहुंच जाता है। दिल्ली जैसे शहर में तो रोज़ ही दीवारों पर नये-नये पोस्टर दिखते हैं। ज्यादातर पोस्टर राजनीति, बिकाऊ चीज़ों या फ़िल्मों के बारे में होते हैं। वहां धरना है या वहां फलाने नेता जी बोल रहे हैं या सस्ती चादरें वहां बिक रही हैं या उस सिनेमा हाल में फलां पिक्चर लग रही है, यही सब होता है।

कभी-कभी कुछ रंगीन पोस्टर घरों, दफ्तरों, रेलवे या बस स्टेशनों के अंदर लगाने के लिए भी बनाए जाते हैं। इन पोस्टरों में किसी ऐतिहासिक इमारत जैसे ताज महल, किसी सुंदर दृश्य जैसे हिमालय, किसी महान स्त्री या पुरुष या किसी अभिनेता या अभिनेत्री की तस्वीर हो सकती है।

बहुत से महिला संगठन भी अपनी बात औरों तक पहुंचाने के लिए पोस्टरों का इस्तेमाल करते आए हैं। अधिकतर औरतों के संगठनों के पोस्टर घरों, संगम या संघ के दफ्तरों, स्कूलों में लगाने के लिए बनाए जाते हैं। सड़कों पर मैंने महिलाओं के पोस्टर कम देखे हैं।

पोस्टर की ख़ासियत

हम लोगों ने पोस्टरों का इस्तेमाल इसलिए अधिक किया क्योंकि हम इन्हें खुद भी बना सकते हैं। जिसको भी थोड़ी बहुत तस्वीर बनानी आती हो, साफ़ लिखना आता हो वह पोस्टर बना सकती है। अगर किसी समूह ने कोई धरना करना है या किसी बात पर मोर्चा निकालना है तो कार्यकर्ता बड़े-बड़े कागज़ों पर अपनी बात लिख कर दीवार पर लगा देते हैं या पोस्टर को गत्ते पर चिपका कर अपने हाथ में पकड़ लेते हैं। आप पोस्टर किसी पोस्टर कलाकार से भी बनवा सकते हो जिनका काम ही पोस्टर बनाना होता है।

अगर ज्यादा तादाद में चाहिएं तो आप एक पोस्टर बनाकर उसे छपवा भी सकते हैं। पोस्टरों का एक फायदा यह भी है कि वे काफी सस्ते बनाए जा सकते हैं। अच्छे पोस्टरों से दीवारें सज भी जाती हैं और आपकी बात भी औरों तक पहुंचती रहती है।

पोस्टर हर तरह के होते हैं लेकिन अच्छा पोस्टर वह है जिसमें संदेश छोटा व साफ हो। पोस्टर ऐसा बना होना चाहिए कि वह लोगों का ध्यान अपनी तरफ खींचे, कोई उसे देखे और पढ़े बिना आगे जा ही न सके। अच्छा पोस्टर हमें सोचने को भी मजबूर करता है, बातचीत या बहस के लिए बुलावा देता है। पोस्टर में अगर घिचपिच हो, कई तस्वीरें हों, कई बातें लिखी हों तो पोस्टर का असर कम हो जाता है।

इसीलिए अच्छा पोस्टर बनाने से पहले जिस विषय पर पोस्टर बनाना है उसके बारे में गहराई से सोचना ज़रूरी है। उस विषय के सबसे ज़रूरी पहलुओं को अलग करना ज़रूरी है।

मैं कुछ ऐसे पोस्टरों के उदाहरण देती हूं जो लोगों को अच्छे लगे व जिनका बहुत इस्तेमाल हुआ।

करीब सात-आठ साल पहले दिल्ली में एक पोस्टर बना था। बनाने वाले कहना चाहते थे कि औरतों को अन्याय सहने से मना कर देना चाहिए, अन्याय सहना गलत है। इस पर जो पोस्टर बनाया उसमें एक औरत का चेहरा था लेकिन उस औरत का मुंह नहीं था। (पृष्ठ 2 देखें)
पोस्टर पर लिखा था—

'औरत की मजबूर खामोशी जुल्म का आधार है।

इस मजबूरी को छोड़ो,
इस खामोशी को तोड़ो'

संगठन में जो शक्ति होती है उस पर दो पोस्टर बनाये थे। एक में हिंदी कहावत "एक और एक ग्यारह" लिखा था और एक बहुत ही आसानी से बनाया चित्र था।

दहेज के ख़िलाफ़, औरतों की मार-पीट, नशाखोरी के ख़िलाफ़ भी बहुत से पोस्टर बनाए गए हैं। औरतों के कभी न खत्म होने वाले काम के बोझ पर भी कई पोस्टर बने हैं।

अभी हाल में धर्म के नाम पर फैलाई जाने वाली हिंसा के ख़िलाफ़ कई संगठनों ने बहुत अच्छे पोस्टर बनाए हैं।

चूंकि यह साल "बालिका वर्ष" है दिल्ली की संस्था "जागोरी" ने नौ पोस्टरों का एक सेट बनाया है। हर पोस्टर में एक तस्वीर है और हिंदी व उर्दू में संदेश है। ये सेट तथा कई और पोस्टर इस पते से मंगवाए जा सकते हैं —

जागोरी
बी-5 हाउसिंग कोऑपरेटिव सोसायटी
साउथ एक्सटेंशन पार्ट-1
नई दिल्ली-110049

शिविरों और ट्रेनिंग में बातचीत शुरू करने के लिए पोस्टरों का खूब इस्तेमाल होता है।

अगर आपकी संस्था ने पोस्टर बनाए हों तो 'सबला' को भेजें ताकि हम उन्हें औरों तक पहुंचा सकें। □

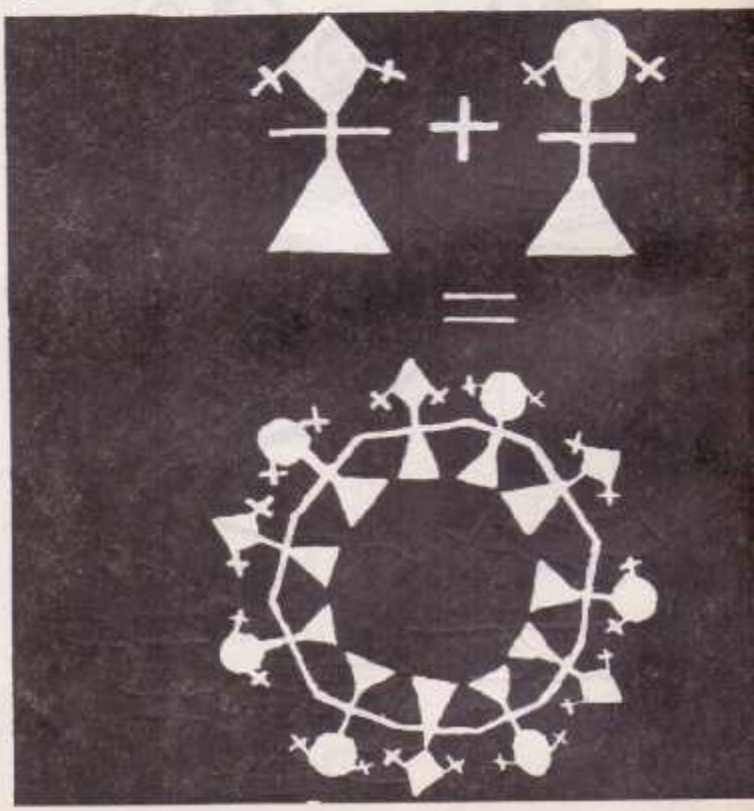

नारी-आंदोलन में गीतों की भूमिका

'जागोरी' समूह

तोड़ तोड़ कर बंधनों को देखो बहनें आती हैं
ओ देखो लोगो देखो बहनें आती हैं
आएंगी, जुल्म मिटाएंगी,
वो तो नया ज़माना लाएंगी

औरतों के साथ औरतों के सवालों पर काम करने की शुरुआत जब की तो उन माध्यमों को पहचानने की भी ज़रूरत पड़ी जो औरतों के क़रीब हैं। हमने देखा कि सदियों से औरतें लोक गीतों के ज़रिए अपनी ज़िंदगी के दुख और परेशानियां, अपने हालात की कठोरता, अपनी अधूरी उमंगें और साथ ही अपनी खुशी, अपने सपनों का बयान करती आई हैं। समाज और रीति-रिवाजों के दबाव से घिरी औरतों के लिए अपनी बात कहने का ज़रिया गीत ही थे। सुबह-सवेरे चक्की चलाते, दूध बिलोते, धान-गेहूं काटते, बच्चों को सुलाते, शादी-ब्याह, त्यौहार-मेले; हर मौके पर गीत, संगीत हम औरतों के संग रहे हैं।

वैसे तो जन-आंदोलनों में भी लंबे अर्से से गीतों का इस्तेमाल होता आया है—पर औरतों के संदर्भ में ये सिर्फ़ औरतों का अपना माध्यम ही नहीं है बल्कि इस माध्यम में उन सब औरतों तक पहुंचने की क्षमता है जो पढ़ी लिखी नहीं हैं, घरों में अकेली पड़ गई हैं, बाहर की दुनिया से अनजान हैं। दूसरे संचार माध्यम एक तरह की सामूहिक भागीदारी मांगते हैं जो कि बहुत औरतों की ज़िंदगी में संभव नहीं है—पर गीत वे अकेले गा सकती हैं। यदि वे उन्हीं की भाषा में हों तो उनके शब्दों को अपनी ज़िंदगी से जोड़ सकती हैं—बदले विचारों और शब्दों पर अकेले और मिलकर कुछ सोच सकती हैं।

इसलिए नारी आंदोलनों के दौरान भी गीतों की एक खास भूमिका बन गई है—गीतों ने हम में एक नई चेतना पैदा की है और हमारी एकता, हमारी ताकत के एहसास को बढ़ाया है। अलग-अलग मुद्दों पर निकाले गए मोर्चों, धरनों, हमारे बनाए नाटकों, हमारे शिविरों और मीटिंगों में इन गानों ने जन्म लिया है।

जब हमने पहली बार अपने गानों की किताब और कैसेट निकाली तो हम नहीं जानते थे कि इसकी प्रतिक्रिया क्या होगी——पर गानों की किताब चंद महीनों में बिक गई। सबसे खास बात तो यह है कि वे किताबें हर महिला कार्यकर्ता के झोले का एक ख़ास हिस्सा बन गईं। कैसेटों की मांग धीरे-धीरे बहुत बढ़ गई। हम इतना ही कह सकते हैं कि आज तक हमने करीब 3000 कैसेट बेची हैं। पहली कैसेट निकालते वक्त हमने एक छोटा सा अनुदान लिया था पर उसके बाद दोबारा पैसा कहीं से भी नहीं लेना पड़ा। दरअसल गानों की किताबें और कैसेट एक ऐसा प्रोजेक्ट है जो अपने पांव पर खड़ा है। उसे औरतों और कई पुरुष साथियों ने इतना अपना लिया कि अब तक हम गानों की 3 कैसेट निकाल चुके हैं जिनमें कुल मिलाकर करीब 50 गाने व कुछ कविताएं भी हैं।

दरिया की कसम मौजों की कसम
ये ताना बाना बदलेगा
तू खुद को बदल तू खुद को बदल
तब ही तो ज़माना बदलेगा

हम ये गीत तो हमेशा गाते ही रहे। दूर-दराज़ के गांवों तक इनकी गूंज पहुंच गई। साथ ही नये-नये गीत उभरने लगे। किसी अनपढ़ बहन ने अपना गीत

बना किसी पढ़ी-लिखी बहन को लिखाया तो किसी ने अपनी भाषा में कुछ बहुत ही सुंदर अपना रचा—यानी बहनों के लिए ये इतना अपना माध्यम था कि उन्हें देर न लगी इसे फिर नई तरह से इस्तेमाल करने में। अभी इन्हीं दिनों में महिला सामाख्या कार्यक्रम के अंतर्गत सखियों-सहयोगिनियों के गीतों व कविताओं का संकलन तैयार हुआ है। जब बहनें खुद जानी पहचानी लोक धुनों पर अपने गीत अपने मन के भाव लिखने लगीं तो उन शब्दों और प्रतीकों में एक अलग सोंधी खुशबू थी जैसे मिट्टी पर पहली बरखा के पड़ने से आती है। ये गीत औरतों को औरतों के और करीब ले गए।

कल-कल करती कहती गंगा
तुम भी धारा बन जाओ
राहें अलग अलग हैं अपनी
पर मंज़िल तो एक है
तुम सबको आंखों में बसाकर
बंद कर लीं अपनी आंखें
प्यार अलग-अलग है अपना
पर ठहराव तो एक है।

ख़ास बात तो यह है कि ये गीत हमारी मजबूरी का बयान नहीं हैं। इनमें तो समाज और अपने हालात को बदलने की ख्वाहिश, हर जुल्म का मुकाबला करने की ताक़त नज़र आती है। हमारी फ़नकारी, हमारी खुशी, हमारे सपने भी इन गीतों में झलकते हैं।

अब अन्य जगहों से भी नये-नये संकलन व कैसेट निकल रहे हैं—अपने-अपने इलाके की लोक धुनें, लोक संगीत व साजों के साथ। पाकिस्तान के महिला समूह "बेफ" के गीतों में जहां पंजाबी धुनों की गुनगुनाहट है तो बंबई में "वाचा" द्वारा निकले कैसेट में मराठी और गुजराती धुनों का प्रभाव है। हम गाने वालों की मंडली बढ़ती जा रही है। जब हम अपने सारे फ़र्कों को भूलकर मिलकर गीत गाते हैं तो एक बहुत ही सुंदर बहनचारे का समां बंधता है। □

एक लोकगीत

मैं तो थ्यारे गैल चलूंगी रे
ओ ननदी के वीरा !

थ्यारे पीछे जाए से म्हारी
सासुल काम करावेंगी
सारे ही कुनबा को चून मोइसे पिसवावेंगी
म्हारा गूंठा चून पीसे रे
ओ ननदी के वीरा !

थ्यारे पीछे जाए से म्हारी
ननदी काम करावेंगी
सारे ही कुनबा को पानी मोइसे भरवावेगी
म्हारा गूंठा पानी लावै रे
ओ ननदी के वीरा !

थ्यारे पीछे जाए से म्हारी
दौरानी काम करावेंगी
सारी ही भैंसन को गोबर मोइसे रखवावेगी
म्हारा गूंठा गोबर डारे रे
ओ ननदी के वीरा !

थ्यारे पीछे जाए से म्हारी
जिठानी काम करावेंगी
सारे ही कुनबा की रोटी मोइसे करवावेंगी
म्हारा गूंठा रोटी पोवै रे
ओ ननदी के वीरा !

यह गीत गांव अघापुर, जिला भरतपुर (राजस्थान) में प्रचलित है। पत्नी अपने पति से ठुमक कर कहती है कि वह उसके साथ जाएगी। अगर वह पीछे रहती है तो सास, ननद, देवरानी, जेठानी—सभी उससे बहुत काम कराएंगी।

इस गीत में पत्नी ने अपना विरोध व्यक्त किया है।

दीवारें नहीं बोलतीं

सुहास कुमार

हम आप सब जानते हैं कि कोई भी बात यदि बार-बार कही जाए तो उसका असर पड़ता है। उसी बात को बड़े-बूढ़े कहते हैं तो ज़्यादा असर होता है। यदि उससे धर्म जोड़ दिया जाए तो उसे मानने को हम मजबूर होते हैं।

बचपन से ही हमें बड़े होकर समाज में क्या भूमिका निभानी है, उसके लिए तैयार कराया जाता है। घर-बाहर, नाते-रिश्तेदार, अड़ोसी-पड़ोसी, टी.वी. और फिल्मों में प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप से हमें तैयार किया जाता है।

गलत धारणा

लड़कियों को ज़्यादा पढ़-लिख कर क्या करना है? उन्हें घर के कामकाज में निपुण होना चाहिए। नौकरी करना और कमाकर लाना पुरूषों का काम है। औरत का काम पति के कामों में हाथ बंटाना है। परिवार की देखभाल की जिम्मेदारी औरत की है। कम पैसे में सबको खाना खिलाने की ज़िम्मेदारी भी उसी की है। ज़िम्मेदारियों का तो ओर-छोर नहीं है। क्या वह ऐसी ज़िंदगी ही जीती रहेगी? क्या वह दूसरों के बताए रास्ते पर ही चलती रहेगी? क्या वह घर की चार दीवारी में सुरक्षित है?

अगर दीवारें बोल सकतीं तो बतातीं कि घर में भी औरतों को क्या नहीं सहना पड़ता है। लड़की या पत्नी होने के नाते, उनका अपना कोई समय नहीं। घर, संपत्ति उनकी अपनी नहीं। अपनी कमाई पर भी उनका अधिकार न के बराबर होता है। उनका शोषण, दमन और अवहेलना होती है। यौन हिंसा की भी जब-तब वे शिकार होती रहती हैं।

अपनी बात कहें

दीवारें नहीं बोलेंगी। हमें ही अपनी बात कहनी होगी। हमारी बात हमसे अच्छी तरह कौन कह सकता है। हमारी पीड़ा और हमारे दर्द को हमसे अच्छा कौन समझ सकता है। "जाके पैर न फटी बिवाई, वह क्या जाने पीर पराई।"

लड़कियों के अधिकार

1. लड़कियों को जन्म लेने का उतना ही अधिकार है जितना लड़कों को।
2. लड़कियों को समान अवसर और सुविधा मिलनी चाहिए।
3. लड़की के स्वास्थ्य और भोजन पर पूरा ध्यान दिया जाना चाहिए।
4. लड़की को शिक्षा के लिए पूरा प्रोत्साहन और सुविधा मिलनी चाहिए।
5. लड़की को खेलकूद और मनोरंजन के लिए समय मिलना चाहिए।
6. घर के काम में बेटा-बेटी की बराबर की भागीदारी होनी चाहिए।
7. खेलने-कूदने, घूमने-फिरने पर पाबंदियां नहीं लगानी चाहिएं।
8. लड़की को पूरा सम्मान मिलना चाहिए।
9. उसके शारीरिक और मानसिक विकास को पूरा अवसर मिलना चाहिए।
10. उसे उसका बचपन मिलना चाहिए यानि उसे घर और बाहर के कामों में ऐसे नहीं लगाना चाहिए कि वह काम के बोझ से दब जाए और हंसना ही भूल जाए।

हमें अपनी बात ज़्यादा असरदार ढंग से ज़्यादा लोगों तक पहुंचाने के लिए अन्य माध्यमों का सहारा लेना होगा। इसी बात को ध्यान में रख कर 'सबला' के इस अंक में हमने संचार माध्यमों के बारे में विस्तार से बताने की कोशिश की है। आशा है हमारी बात आप तक पहुंचेगी और आपके दिलों को छुएगी। □

11. उसकी बात को गंभीरता से सुनना चाहिए और मानना चाहिए।
12. बेटी जब तक पढ़ना चाहे उसे अवसर मिलना चाहिए।
13. शादी के लिए ज़ोर-ज़बर्दस्ती नहीं करनी चाहिए।
14. उस पर रीति-रिवाज नहीं थोपे जाने चाहिएं।
15. उसे अपने मनपसंद विषय और काम चुनने, सीखने और करने की पूरी आज़ादी होनी चाहिए।
16. लड़कियों की सुरक्षा के लिए उन्हें यौन संबंधी शिक्षा देना आवश्यक है।
17. उनकी आयु के साथ-साथ होने वाले शारीरिक बदलावों की सही जानकारी समय पर दी जानी चाहिए।
18. किसी भी ऐसे काम में उन्हें नहीं लगाना चाहिए जिसमें उन्हें अपने लिंग के कारण विशेष ख़तरा हो।
19. उनको स्वतंत्र जीवन जीने के अधिकार का विकल्प भी मिलना चाहिए।
20. उन्हें इज़्ज़त से जीने का अधिकार मिलना चाहिए। □

साभार—अनसूया

मज़हबी कट्टरता के खिलाफ़ औरतों की आवाज़

कमला भसीन

पिछले कुछ महीनों से देश में जगह-जगह डर और घृणा फैलाई जा रही है। मंदिर और मस्जिद के नाम पर पड़ोसियों को, देशवासियों को बांटा जा रहा है। बहुत से शहरों और गांवों में तो घरों और दुकानों को आग लगाई गई है, लोगों की हत्याएं हुई हैं, दंगे भड़के हैं।

भगवान के नाम पर ये दंगे क्या अनपढ़, अनजान लोग फैला रहे हैं? क्या ये दंगे आम हिंदु और मुसलमान कर रहे हैं? क्या धार्मिक नेता भगवान के नाम पर झगड़ रहे हैं? नहीं। ये दंगे पढ़े-लिखे, जाने-माने नेता भड़का रहे हैं। राजनैतिक नेता धर्मों की लड़ाई में आगे हैं। वही रथ चला रहे हैं।

इस रथ-यात्रा पर करोड़ों रुपये ख़र्च हुए हैं। फिर इस रथ यात्रा को रोकने पर, कानून बनाए रखने पर और करोड़ों रुपये ख़र्च हुए हैं। दंगों में करोड़ों रुपयों की संपत्ती जलाई गई है। इस सब से छोटे-बड़े काम-धंधों का भी नुकसान हुआ है। मंहगाई और बढ़ेगी और मारे जाएंगे ग़रीब लोग।

बड़े व्यापारियों का तो फ़ायदा होगा। ज़्यादा चोट ग़रीब औरतों पर होगी जो घर चलाती हैं, बच्चे पालती हैं।

हमारा मानना है कि ये मंदिर मस्जिद के झगड़े नेता लोग वोटों के लिये करवा रहे हैं। खुद सत्ता में बने रहने के लिए करवा रहे हैं। इन नेताओं को न तो देश की फ़िक्र है, न ग़रीबों की। उन्हें सिर्फ़ अपनी कुर्सी की फ़िक्र है।

अगर ग़रीबों की फिक्र होती तो ये नेता ग़रीबी मिटाने के लिए रथ चलाते, गांवों में साफ पानी पहुंचाने के लिए रथ चलाते, चारा और लकड़ी के लिए रथ चलाते, लोगों को साक्षर करने के लिए, उन्हें दवा पहुंचाने के लिए रथ चलाते मंदिर बन जाने से ग़रीबों को क्या फ़ायदा होगा? भगवान लोगों के दिलों में रहता है या आलीशान मंदिरों में? जहां करोड़ों भूखे मर रहे हैं वहां मंदिर पर करोड़ों रुपये लगाना ठीक है क्या?

गांधी जी कहते थे, "ईश्वर अल्लाह तेरे नाम।" तो फिर ईश्वर और अल्लाह पास पास या एक ही घर में क्यों नहीं रह सकते! नेता तो ईश्वर और अल्लाह, राम, रहीम, गुरू नानक को भी लड़वा रहे हैं। ऐसे नेताओं की बातों में अगर हम आ गए तो हर गांव, हर शहर और ये पूरा देश बंट जाएगा। हमारा शांति से रहना मुश्किल हो जाएगा।

अभी एक हफ्ता पहले दिल्ली की कुछ औरतों ने इस हिंसा और धार्मिक कट्टरपन के खिलाफ अपनी आवाज उठाने की सोची। हम लोगों को और नेताओं को कहना चाहते थे कि हम औरतें शांति के लिए लड़ेंगी। अपनीं बात हज़ारों लोगों तक पहुंचाने के लिए हमने तय किया कि हम दिल्ली के इंडिया गेट के पास *धरना* देंगी। धरना, जुलूस, प्रदर्शन भी अपनी बात लोगों तक पहुंचाने का एक अच्छा तरीक़ा है।

हम 29 अक्टूबर को सुबह नौ बजे से शाम के सात बजे तक इंडिया गेट पर रहीं। हम क़रीब दो सौ औरतें थीं। इंडिया गेट के पास एक चौराहे पर एक बड़ा गोल चक्कर है। हमने उस गोल चक्कर में चार बड़े-बड़े बैनर लगाए। (कपड़े पर अपनी बात, नारा या अपने संगठन का नाम लिखते हैं तो यह *बैनर* कहलाता है। बैनर भी एक अच्छा प्रचार माध्यम है)। हमारे बैनर पर लिखा था "मज़हबी कट्टरता के ख़िलाफ औरतों की आवाज"। आते-जाते हज़ारों लोगों ने हमारे बैनर देखे। हम ने इस दिन नारे नहीं लगाए। मौन रह कर अपनी बात कहने का तय किया। दो-दो औरतों ने सफ़ेद साड़ियां अपने हाथों में पकड़ीं। क़रीब तीस सफ़ेद साड़ियों से ऐसे प्रदर्शन करते रहे। सफ़ेद रंग शांति का रंग माना जाता है। हम चुपचाप सब को कह रहे थे कि हमें शांति चाहिए।

अपनी पूरी बात लोगों तक पहुंचाने के लिए हमने एक पर्चा भी छापा। यह पर्चा हिन्दी, उर्दू और अंग्रेजी में था। 8000 पर्चे हमने उस दिन बांटे।

दिन में पेड़ों के नीचे बैठकर हमने गाने गाए, धर्म के नाम पर किए जाने वाले झगड़ों के खिलाफ नाटक खेले। यानि अलग अलग तरीकों से हमने अपनी बात हजारों लोगों तक पहुंचाई।

चुप रहने से अब काम नहीं चलेगा। हिंसा और सांप्रदायिकता का विरोध करना ज़रूरी है। जो लोग लोगों में बैर फैलाते हैं उनका विरोध करना ज़रूरी है। स्वार्थी नेताओं के पीछे अगर लोग नहीं रहेंगे तो स्वार्थी नेता अपने आप ख़त्म हो जाएंगे।

हम 'सबला' में अपना पर्चा छाप रहे हैं ताकि आप को भी पता लगे कि हम औरतें दिल्ली की सड़कों पर क्या कह रही थीं। अगर हर घर, हर बस्ती, हर गांव, हर शहर से शांति, आपसी प्रेम और सद्भाव के लिए आवाज़ उठ जाए तो क्या मज़ाल है हिंदुस्तान बंट जाए। □

हर कट्टरपन सिर्फ हिंसा ही फैला सकता है।
हिंसा के पक्ष में हम औरतों का वोट हर्गिज़ नहीं पड़ेगा।

धर्म और राजनीति के ठेकेदार एक बार फिर इस देश के टुकड़े करने पर उतारू हैं। एक बार फिर डर, शक और नफ़रत का दमघोट धुआं हमारे दिलों और बस्तियों में उठ रहा है। कुछ घरों, गांवों और शहरों में तो आग भड़क भी चुकी है।

आज जिस तरतीब से फिरकापरस्ती को फैलाया जा रहा है वैसा शायद 1947 में भी नहीं हुआ था। आग के इस खेल में खिलाड़ी तो सत्ता के भूखे चंद लोग हैं, लेकिन इस खेल से जलेंगे, मरेंगे, लुटेंगे आम लोग—आप और मैं।

हिंसा भड़काने वाले अक्सर मर्द होते हैं पर हर हिंसा का असर औरतों पर ज्यादा पड़ता है। दो गुटों की लड़ाई में इज्ज़त हम औरतों की लूटी जाती है, बलात्कार हमारा होता है, बेवा हम होती हैं। धर्म, जाति, देश की रक्षा के नाम पर बलि हमारे बच्चों की चढ़ती है। नफ़रत की आग बुझाने और राख से दोबारा ज़िन्दगी शुरू करने का काम हम औरतों पर पड़ता है।

हम औरतें इस आगज़नी और दीवानगी में हिस्सेदार नहीं हैं और हम इसे नहीं सहेंगी। हम फ़र्क और अनेकता की इज्ज़त करतीं हैं। मतभेदों और झगड़ों से, चाहे वो घरेलू, जातिगत, राजनैतिक, धार्मिक, आर्थिक हों, निबटने का हिंसात्मक तरीक़ा अब हम और नहीं सहेंगी।

बसें, रेलगाड़ियां, बस्तियां जला कर, निहत्थों पर गोलियां चलाकर बात कहने के तरीक़े को अब हम और नहीं सहेंगी। हम औरतें हर जगह हिंसा के खिलाफ आवाज़ उठाएंगी—अपने घरों में, बस्तियों में, गांवों में, शहरों में, पंचायतों में और देश की लोकसभा में।

हिंसा के हक़ में हमारा वोट नहीं पड़ेगा क्योंकि हम जानती हैं कि हर हिंसा करने वाला अपने से कमज़ोर को दबाता है, हर हिंसा का असर औरतों पर दोहरा पड़ता है। जो लोग हथियार उठाने को मर्दानगी समझते हैं वो असल में बुज़दिल हैं और वो किसी की भी हिफ़ाज़त करने के नाकाबिल हैं।

- ◯ अनेकता हमारे देश की जान है पर धर्म और देश के नाम पर इसी का गला घोंटने की कोशिश की जा रही है। इससे देश और गरीब होगा और ये हमें मंजूर नहीं।
- ◯ हथियार उठाने की कोई भी ललकार हमें मंजूर नहीं।
- ◯ देश बनाने का ऐसा कोई भी सपना जो एक भी हिंदुस्तानी को कमतर या गैर समझे हमें मंजूर नहीं।
- ◯ कट्टर और अप्रजातांत्रिक धर्म और राजनीति हमें मंजूर नहीं।
- ◯ डर और नफ़रत फैलाने वाले धर्म, राजनीति और नेता हमें मंजूर नहीं।
- ◯ धर्म का इस्तेमाल कर हमें बांटने की हर चाल के हम खिलाफ़ हैं।
- ◯ बांट कर राज करने के हर हथकंडे के हम खिलाफ़ हैं।

मार्च के महीने में पदमपुरा गांव (जयपुर) में महिला विकास-कार्यक्रम ने साथिन-मेला आयोजित किया। इस मेले के बाद कोटा और डूंगरपुर की साथिनों ने अपने मेले के अनुभवों को इस कागद में बताया है।

जब गांव से गए थे तो सोचा था कि मेले में दुकानें, झूले सभी होंगे। गांव की बहनों ने भी सामान मंगाने के लिए पैसे दिए थे मगर वहां तो साथिने ही झूला थीं। वे ही दूकान और वे ही नाटक थीं। बिना पैसे के बहुत सारी बात लेकर घर आए।

पदमपुरा आना अच्छा लगा। हमारे बाप-दादा तो सागवाड़ा देखकर ही मर गए और हम जयपुर तक पहुंच गए।

मुख्यमंत्री जी से हम सब साथिनों की बातचीत हुई। हमारी हिम्मत बढ़ी, पुष्पा बहन जी (महिलाओं की मंत्री) ने हमारी जाजम (संगठन) को और गांवों में बढ़ाने की बात करी जो अच्छी लगी। मुख्यमंत्री जी बोले कि परिवार नियोजन का काम करो। हमें लगा यह काम दबाव से नहीं, लुगाई की इच्छा से होना चाहिए।

आदिवासी साथिनें नाचीं। बहुत अच्छा लगा। गजरी बाई माइक पर बोली जिससे अपने में हिम्मत आई।

मेले में तिलोनिया के बाजे का भी बहुत मज़ा आया। स्टेज पर बोलने का मौका हमें पहली बार मिला।

खेल खेलने से भी हमें हिम्मत मिली। हमने कभी गांव में औरतों को खेल खेलते नहीं देखा था।

रस्सा-कसी अच्छी लगी। पर दोनों तरफ खींचने वाले बराबर नहीं थे। यह बुरा लगा। किसी के जूते टूट गए, किसी के पैर में चोट लगी।

कठपुतली का खेल देखा और भगतसिंह का नाटक भी अच्छा लगा। रुकमा बाई ने गाना गाया। उसमें भी बड़ा मज़ा आया।

स्टेज पर साथिनों ने अपना काम नाटक के रूप में बताया, अच्छा लगा। मेले में इधर-उधर फोटो खिंचना अच्छा लगा। नौ ज़िलों की साथिनें, पी.डी., प्रचेता, इदारा और बाहर के लोग जुड़े। सबसे मिलकर हिम्मत मिली।

हमने नाम मांडे। राखी बांधी, मेहंदी लगाई। खाने में कूपन का तरीका अच्छा नहीं लगा। रोटी कुछ कच्ची बनी थी। सब साथिनों ने कहा रोटी कच्ची है, तो दूसरे दिन खाना ठीक बना पर कमी तो थोड़ी-थोड़ी रोज रहती थी।

हमारे से कहा बिस्तर मत लाना जिससे हमें

बहुत ठंड लगी। हमने जब स्टोर से चादर ली तो हमसे वापस ले ली। हमें यह अच्छा नहीं लगा।

नौ ज़िलों की साथिनें बोली कि मानदेय बढ़ना चावे (चाहिए), ये बात अच्छी लगी। पर अठारह साथिनों ने जब मेले के पन्द्रह दिन बाद मीटिंग रखने की बात की तो बाकी सारी साथिनों ने उनकी बात क्यों नहीं मानीं?

चार दिन तक हम सब साथिनें साथ रहीं। 680 साथिनों ने मिलकर मानदेय बढ़ाने की बात करी। हमने एक दिन में ही एकट बना ली, सभी को लगा हमारा मानदेय बढ़ना चाहिए क्योंकि पांच साल में महंगाई बढ़ी है। काम भी बढ़ा है और गांव से बार-बार बाहर भी जाना पड़ता है। हम सबने यह बात ज़ोर से उठाई।

प्रदर्शनी में लड़का और लड़की के भेद की बात निकल कर आई। औरत के दुख की बात भी आई। औरत ने ऐसा क्या बिगाड़ा है जो जिंदगी भर दुख सहती रहेगी।

मुझे तो प्रदर्शनी देखकर बहुत शर्म आई कि हमने कुछ नहीं बनाया। हमारे ज़िले में हमें बताया नहीं था नहीं तो हम भी बनाकर लाते।

पंडाल में बहुत से मुद्दों पर चर्चा हुई। अकाल की भी जानकारी मिली। लुगाइयों के दुख की भी बात करी। चौसला गांव की साथिन बरदी बाई से ज़बरदस्ती झगड़ा लिया। औरतें गांव में गईं और झगड़ा वापस ले आईं। हमारे गांव में ऐसा हो तो हम भी मुद्दा सुलझा सकते हैं।

□

साथिन रो कागद
राज्य इदारा, जयपुर

आमतौर से मेले का ज़िक्र सुनकर लगता है कि वहां बहुत सी दूकानें होंगी। तरह-तरह के सामान बिकने आए होंगे। झूले, ऊंचे गोल चक्कर (हिंडोले) होंगे। नट-नटी का खेल होगा। बंदर-सपेरा नाच होगा, आदि आदि।

मेला ऐसा भी हो सकता है जैसा साथिनों ने बखान किया है। इस तरह के मेले के बहुत से फायदे हैं। आपस में मिलने-जुलने का यह बहुत अच्छा तरीका है। अपने अनुभव, सोच एक दूसरे के साथ हम बांट सकते हैं। अपने दुखों को बांट सकते हैं। मिल बैठकर हमारी हिम्मत बढ़ती है। जानकारी के साथ साथ हममें नई ताकत भी जगती है। अपनी बात एक दूसरे तक पहुंचाने का कितना अच्छा तरीका है।

दो चार दिन हम रोज की चिंताओं, काम-काज से भी छुट्टी पा जाते हैं। थोड़ी देर के लिए ही सही, हम भूल जाते हैं कि हम किसी की मां, पत्नी या बेटी, बहू, ननद या भावज हैं। बस हम और हमारी साथिनें होती हैं। हमें महसूस होता है कि हम अपने में भी एक इकाई हैं। हमारी अकेले भी अपनी एक पहचान है। हम अपनी खुशी के लिए भी कुछ कर रहे होते हैं। खेलते समय अपना बचपन लौट आया सा लगता है।

मेला कहीं भी लगाया जा सकता है लेकिन गांव से थोड़ा हटकर हो तो अच्छा रहता है। पुरुष न हों तो औरतें ज्यादा खुलकर बातें करती हैं। मौज मस्ती करती हैं। बाहरी लोग वहां न आ सकें तो अच्छा है।

□

गुड्डो किसी

से कम नहीं

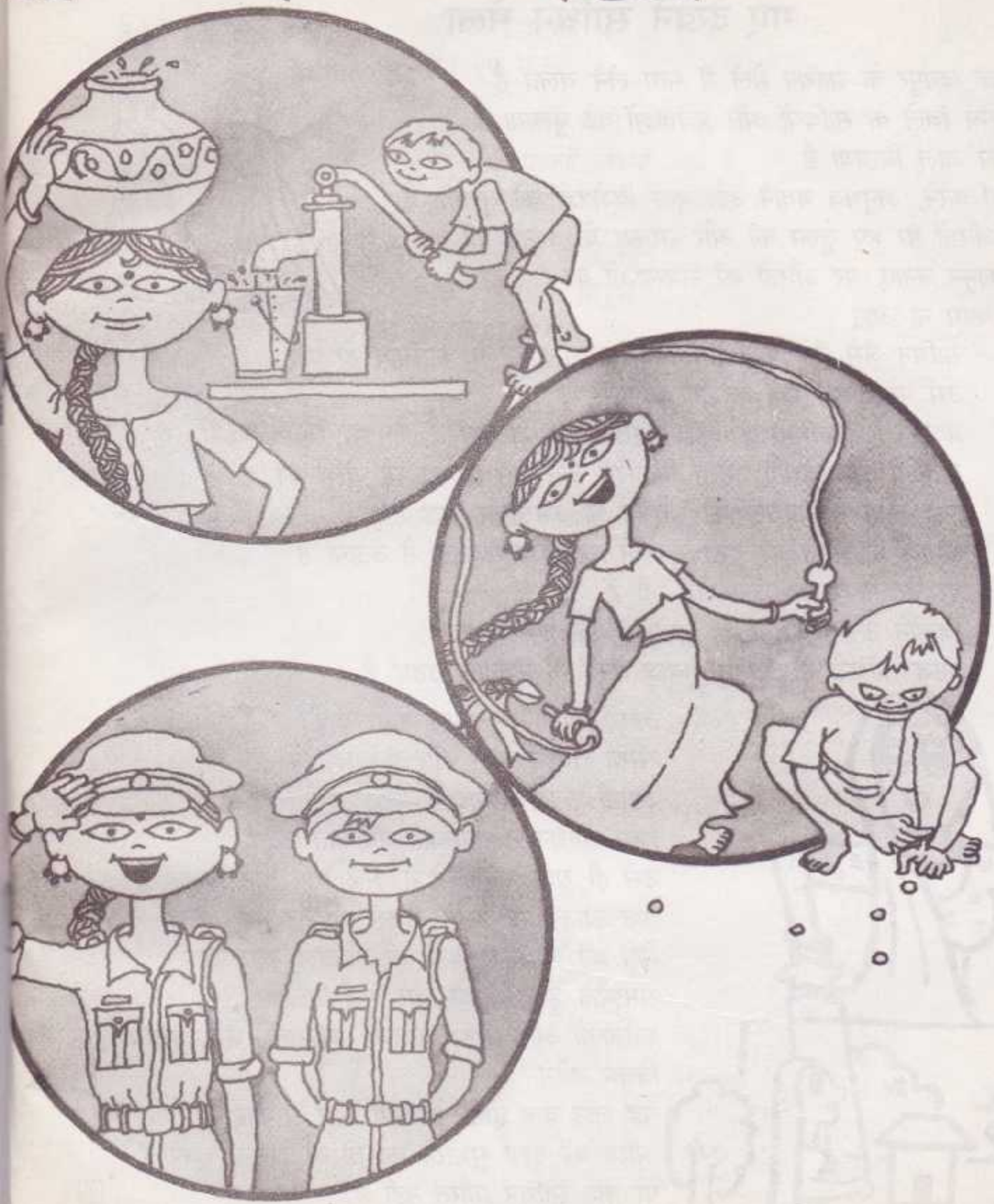

चित्रांकन : तापोसी घोषाल

गए देखने साथिन मेला

चलो री सखी जयपुर के साथिन मेले में भाग लेने चलते हैं
साथिनों ने सब जिले के साथियों और प्रचेताओं को बुलाया है
समस्याओं का जाल बिछाया है
उस पर चर्चा करने, अनुभव बताने और कुछ विशेषज्ञों को बुलाया है
समस्याएं—औरतों पर हुए ज़ुल्म की और सरकार के कानून की
सरकार ने कानून बनाए, पर औरतों की समस्याओं को
सुलझाने में काम ना आए

साथिन जैसे तैसे कुछ समस्याओं के सुलझाने में कामयाब हो पाए
उस पर उन्होंने एक प्रदर्शनी लगाई,
प्रदर्शनी से साथिनों की कुछ समझ साफ हो पाई
प्रदर्शनी और चर्चाएं औरत के काम और उस पर हो रहे ज़ुल्म की
उसी चर्चा से साथिनों की समस्या भी उभर कर आई है
समाज में औरत की दशा सुधारने का बीड़ा साथिनों ने उठाया है
पर घर में वे भी ज़ुल्म सह रही हैं
जिन्होंने उन्हें सिखाया था ज़ुल्म के खिलाफ लड़ना
आज साथिनों ने अपनी आवाज उन्हीं के खिलाफ उठाई है

अपने खिलाफ आवाज उठते देख
संस्था चलाने वाले और प्रचेताओं ने
अपनी शक्ल छिपाई है
जिस साथिन ने तनख़्वाह की बात उठाई,
उसे ही सारी प्रचेताओं ने अकेले में डांट पिलाई है
डांट खाकर भी उसने अपनी आवाज नहीं दबाई
मेले की जगह साथिनों की हड़ताल नज़र आई
समझौता हुआ—एक बार फिर मिलेंगे
प्रचेताओं और संस्था चालक, महीनावार और छुट्टियों पर
विचार करेगें
यह जाने कब होगा, संस्थाएं और सरकार
औरत की दशा सुधारने का तो बीड़ा उठा चुकी हैं
पर क्या साथिन औरत नहीं है? □

शशी चौहान

बिटिया आई है

बिटिया चंदा सी हुई
सभी हुए प्रसन्न

ननद मांगे सोने का कंगना
पहली लक्ष्मी आई है
चंदा सी बिटिया आई है।

मचिया बैठल देवर मांगे
खिलाओ भाभी हलुवा
बिटिया आई है।

दरवजा बैठल ससुर मुस्काए
गावो बधावा
लक्ष्मी आई है।

आंगन बैठी सासुजी मुस्काई
सखियां बुलाओ
नाच नचाओ
मेरी पोती आई है।

कृष्णा कुमारी सिंह

चित्रांकन : तापोसी घोषाल

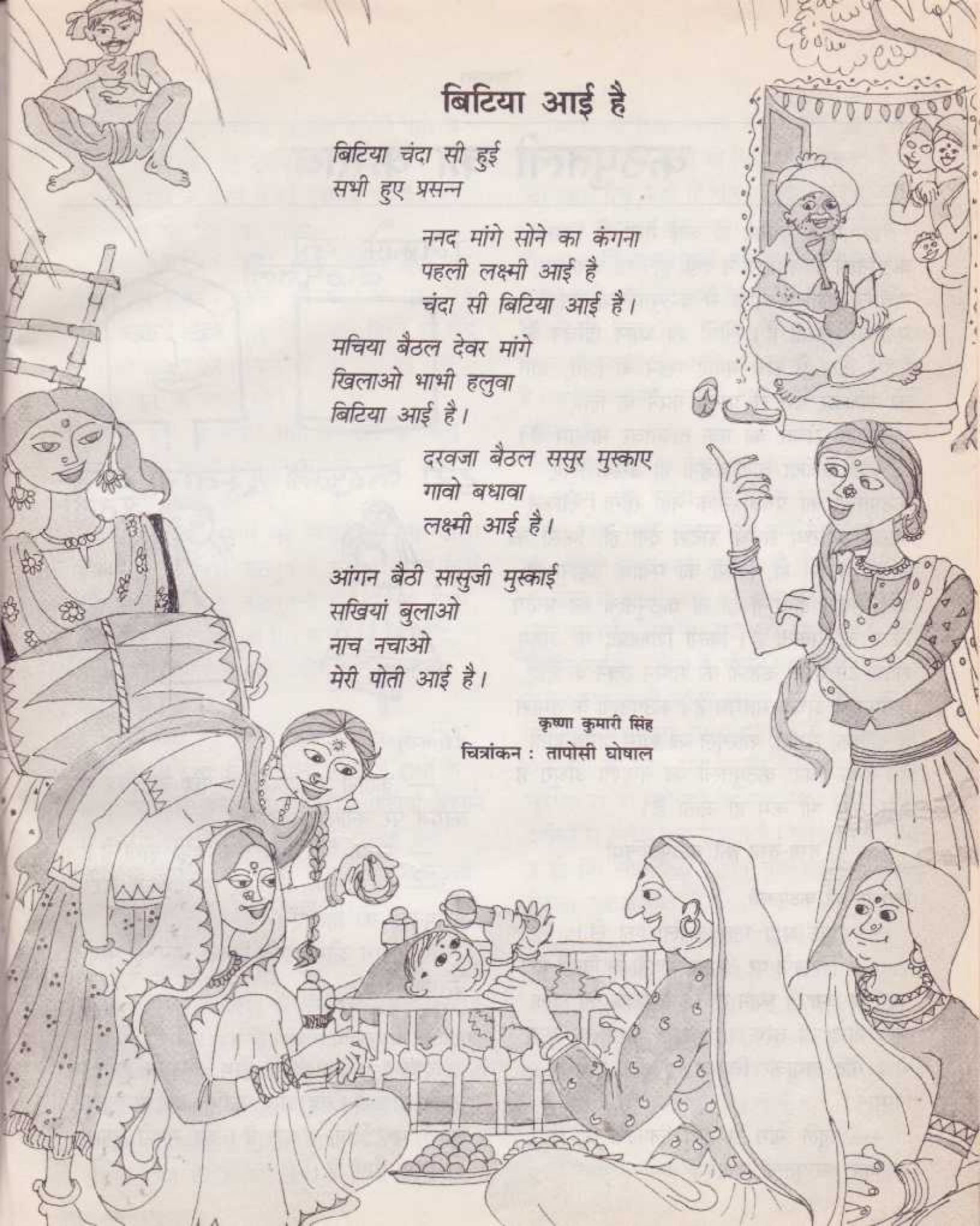

कठपुतली का करतब

हम में से शायद ही कोई ऐसा हो जिसने कठपुतली का तमाशा न देखा हो। गा बजा कर, नाचकर, मज़ेदार बातों से कठपुतलियां हमारा मनोरंजन करती हैं। लोगों का ध्यान खींचने के लिए, खेल में रुचि बनाए रखने के लिए, बात को रुचिकर ढंग से प्रस्तुत करने के लिए कठपुतली संचार का एक ताकतवर माध्यम है।

कोई संजीदा बात कहनी हो उसके लिए कठपुतली का प्रयोग ठीक नहीं रहेगा। लेकिन सफ़ाई, स्वास्थ्य संबंधी संदेश देना हो, किसी की गलती बतानी हो, किसी का मज़ाक उड़ाना हो, कोई संदेश दोहराना हो तो कठपुतली का प्रयोग किया जा सकता है। किसी शिक्षाप्रद या अहम् संदेश देने वाली कहानी को सामने रखने के लिए कठपुतली अच्छा माध्यम है। कठपुतली के तमाशे में ढोलक, संगीत, शोरगुल की खास जगह होती है। इनके बिना कठपुतली का तमाशा अधूरा है और मज़ा भी कम हो जाता है।

तरह-तरह की कठपुतलियां

लिफाफ़े की कठपुतली

— एक बड़ा मज़बूत लिफाफा लें।

— लिफाफे पर अपनी कहानी के किसी पात्र का चित्र बनाएं। ध्यान रहे कि लिफाफे का खुला भाग नीचे की तरफ रहे। खुले हिस्से का कुछ भाग गोंद लगाकर चिपका दें ताकि हाथ न फिसले।

— खुले भाग से हाथ लिफाफे के अंदर डालकर कठपुतली नचाएं।

डंडी कठपुतली

— कहानी के किसी भी पात्र का चित्र मोटे कागज पर बनाकर काट लें।

— इसके पीछे एक लंबी डंडी लगा दें।

— लकड़ी के नीचे का सिरा पकड़ कर कठपुतली को हिलाएं।

— हाथ और डंडे के निचले भाग को परदे के पीछे रखें।

दस्ताना कठपुतली

दस्ताना कठपुतली के हाथ, सिर व शरीर में लचक होती है। यह अन्य कठपुतलियों से ज्यादा घुमाई, नचाई जा सकती हैं। यह सबसे ज़्यादा आकर्षक होती हैं।

— एक पुराना मोज़ा लें और उसको एड़ी के हिस्से से काटकर दो टुकड़े कर लें।

— पंजे के हिस्से में रुई ठूंसकर भर दें। यह कठपुतली का सिर बन गया।

— 10×10 सें.मी. मोटा कागज़ काट कर उंगली पर लपेटें। पुतली की गर्दन के लिए एक नली बना दें। इसे सिर के निचले हिस्से में गोंद लगाकर पक्का करें। ध्यान रहे कि नली का कुछ हिस्सा सिर के बाहर रहे।

— सिर के ऊपरी भाग पर ऊन के बाल लगा दें और बाकी भाग पर रंगों से आंख, कान, नाक, मुंह आदि बना दें।

— अपनी कलाई की लंबाई का एक ढीला झोला सी लें जिसे कठपुतली की गर्दन पर बांधें और सजाएं। बस, कठपुतली का दस्ताना तैयार हो गया। कठपुतली का सिर बनाने के लिए गेंद, मिट्टी और पेपरमेशी का प्रयोग भी किया जा सकता है।

— हाथ की पहली उंगली गर्दन में डालें और अंगूठा तथा दूसरी उंगली को दोनों हाथों के लिए इस्तेमाल करें। अंगूठे और उंगलियां हिलाने से कठपुतली हिलेगी। झोले से कलाई ढक जाएगी। चारपाई के पीछे बैठकर भी कठपुतली का खेल दिखाया जा सकता है।

खेल की तैयारी

— इसके लिए एक नाटकीय कहानी अच्छी रहती है जिसमें संदेश के अलावा उछल-कूद, रोमांच, गाना-बजाना हो। भाषा बिल्कुल बोलचाल की होनी चाहिए। गाने सीधे-सादे तुकबंदी के हो सकते हैं। नाटक में पात्र जितने कम होंगे खेल दिखाने में आसानी होगी। पात्र के हिसाब से कठपुतलियां तैयार कर लें।

तमाशे के लिए विशेष मंच चाहिए होता है। कठपुतली चलाने वाले को छिपने की ज़रूरत है। यदि खास मंच न हो तो चारपाई खड़ी करके, उस पर चादर डालकर मंच तैयार किया जा सकता है। ढोलक मजीरे बजाने वाले और गाने वाले मंच के सामने बाईं ओर बैठ जाएं। मंच पर असली दृश्य दिखाने के लिए घर, कमरा, चौका-चूल्हा, मेजकुर्सी, अलमारी आदि की जरूरत हो सकती है। इनका खाका बनाकर चार्ट तैयार किया जा सकता है।

नाटक और मंच तैयार कर जगह चुनें। लोगों को स्थान और समय की सूचना पहले से देनी होगी। जब सभी इक्टठा हो जाएं तो खेल शुरू करें। पहले थोड़ा गाना बजाना भी हो सकता है।

खेल में ज़रूरी बातों को दोहराया जा सकता है मगर आकर्षक ढंग से। पात्र को साफ और ऊंचा बोलना चाहिए। खेल के दौरान पात्र देखने वालों से सवाल पूछें तो अच्छा लगता है। दर्शक अपने को खेल का भाग समझने लगते हैं। खेल की सफलता के लिए यह अच्छा है। खेल में एक सूत्रधार हो जो मनोरंजन के साथ-साथ संदेश और दर्शकों से संबंध बना सकता है। खेल इतना लंबा न हो कि लोग ऊब जाएं। बार-बार पर्दा उठाना गिराना उबाऊ होता है।

अंत में, खेल के बाद दर्शकों के साथ बातचीत ज़रूरी है। उससे पता चलेगा कि आप उन तक अपनी बात पहुंचा सके हैं या नहीं। इस तरह आगे धीरे-धीरे खेल में सुझावों के अनुसार सुधार भी किए जा सकते हैं। खेल की चर्चा में दर्शकगणों की भी रुचि रहती है। □

साभार—संचार के माध्यम, यूनिसेफ़ प्रकाशन

अनपढ़ की लाचारी

(दृश्य एक)

(जनगणना के लिये शिक्षक घर में आता है। किसी के रामायण पढ़ने की आवाज आती है।)

शिक्षकः यहां कोई कुत्ता तो नहीं?

बूढ़ाः नहीं, आप कौन हैं?

शिक्षकः मैं आपके गांव के स्कूल में शिक्षक हूं।

बूढ़ाः आइए-आइए, बैठिए, कैसे आना हुआ?

शिक्षकः चुनाव आ रहे हैं न दादा, उसके लिए लोगों के नाम पते लिए जा रहे हैं। वोटर लिस्ट बनानी है। क्या इस घर का नं॰ 22 है, आप हरप्रसाद हैं?

बूढ़ाः जी हां, मैं ही हरप्रसाद हूं।

शिक्षकः बाप का नाम क्या है?

बूढ़ाः केशव।

शिक्षकः उम्र?

बूढ़ाः पचपन साल।

शिक्षकः पत्नी का नाम?

बूढ़ाः लक्ष्मी बाई, बावन साल।

शिक्षकः कितने बच्चे हैं?

बूढ़ाः तीन हैं, सबसे बड़ी का नाम शारदा है। शादी हो गई है उसकी, आजकल अंबिकापुर में है। दूसरा राजेन्द्र है, वो यहीं रहता है, पढ़ता था पर नौकरी नहीं मिली अभी तक। तीसरा छोटू है, उम्र 18 साल।

(शिक्षक अपना काम खत्म कर लेता है, ज़रूरी जानकारी इकट्ठी कर लेता है।)

शिक्षकः यहां दस्तखत करो।

बूढ़ाः दस्तखत! मैं!

शिक्षकः इसमें कोई घबराने की बात नहीं है। मैंने ज़रूरी जानकारी लिख ली है, आप देख लो और दस्तखत कर दो।

बूढ़ाः ना बाबा ना, मैं दस्तखत नहीं करूंगा, मेरे लड़के को आ जाने दो।

(बूढ़े का दोस्त एक ग्रामीण आता है)

ग्रामीणः क्यों, क्या बात है?

बूढ़ाः मास्टर जी मुझसे दस्तखत करने को कह रहे हैं। (ग्रामीण कागज उल्टा पकड़ता है)

शिक्षकः कागज सीधा तो पकड़ो, क्या तुम्हें भी पढ़ना-लिखना नहीं आता?

ग्रामीणः (बूढ़े से) देखो हरप्रसाद, दस्तखत मत करना। अपने लड़के को आ जाने दो।

शिक्षकः देखिए मुझे जाना है और बहुत-सा काम निबटाना है। आप दस्तखत कर दीजिए।

बूढ़ाः नहीं-नहीं, मैं दस्तखत नहीं कर सकता।

शिक्षकः कृपया कर दीजिए।

बूढ़ाः देखिए, मुझे पढ़ना-लिखना नहीं आता, मैं दस्तखत नहीं कर सकता।

(दृश्य फ्रीज़ हो जाता है)

सूत्रधारः हमारे भारत में 50 करोड़ लोग निरक्षर हैं, प्रत्येक 100 में से 65 लोग पढ़ना-लिखना नहीं जानते...

(दृश्य दो)

(पोस्ट आफिस का दृश्य, ग्रामीण अंतर्देशीय पत्र खरीदने आता है)

ग्रामीणः भाई साहब, एक अंतर्देशीय देना। (अंतर्देशीय पत्र लेता है) भाई साहब, मेरे लिए एक चिट्ठी लिख देंगे?

क्लर्क: नहीं-नहीं, मेरे पास टाइम नहीं है।
ग्रामीण: (पोस्ट आफिस में बैठे अन्य लोगों से) भाई साहब आप लिख देंगे?
1 आदमी: मेरे पास पैन नहीं है।
ग्रामीण: (दूसरे आदमी से)
2 आदमी: नहीं, मुझे अपनी चिट्ठी लिखनी है?
ग्रामीण: (तीसरे आदमी से) भाई साहब आप?
3 आदमी: लाओ, लिख देते हैं।
ग्रामीण: प्रिय बेटा, बहुत दिनों से तुम्हारी चिट्ठी नहीं आई है, इधर तुम्हारी मां बहुत परेशान है...।

(बस की आवाज)

3 आदमी: लो मेरी बस आ गई, मैं तो चलता हूं।

(आदमी चला जाता है, ग्रामीण असहाय सा खड़ा रह जाता है)

सूत्रधार: इस आदमी की असहायता देखिए। यह अपने बच्चे को अपने दिल की बात तक नहीं लिख सकता। और आपने पढ़े लिखे लोगों का बर्ताव देखा। क्या इन सौभाग्यशाली लोगों की यह जिम्मेदारी नहीं कि वे निरक्षरों की सहायता करें भाई-बहिनो।

(दृश्य तीन)

(बस स्टैंड का दृश्य, ग्रामीण पोटली कंधे पर रखे आता है। बस आती है, ग्रामीण असमंजस में पड़ जाता है। एक व्यक्ति अखबार पढ़ रहा है।)

ग्रामीण: (अखबार पढ़ने वाले से) भाई साहब ये बस दुर्ग जाएगी क्या?
आदमी: तुमने देखा नहीं क्या?

(दूसरी बस आती है, ग्रामीण धक्का-मुक्की करके चढ़ जाता है)

ग्रामीण: (कंडक्टर से) भाई साहब, यह बस दुर्ग जाएगी न।
कंडक्टर: (हंसी उड़ाते हुए) देखना यह दुर्ग जाने के लिए चढ़ा है। अरे पढ़ना नहीं आता क्या? बस के आगे साफ-साफ लिखा है। चलो, उतरो जल्दी।

(ग्रामीण अपना सा मुंह लिए नीचे उतर जाता है। बस चली जाती है)

सूत्रधार: अगर आप छोटी-छोटी बातों के लिए दूसरों पर निर्भर रहेंगे तो क्या आपका भी हाल यही न होगा? जब आप और सब काम कर सकते हैं तो क्या पढ़ना-लिखना नहीं सीख सकते? समय आ गया है कि आप इस असहायता से बाहर निकलें। □

साभार—भारत ज्ञान विज्ञान समिति

आज मेरा गाने का मन है
झूम झूम गाने का मन है
तुम संग गाने का मन है
गाते ही जाने का मन है
हां मेरा गाने का मन है
आओ तुम भी गाओ ना
झूम झूम कर गाओ ना
गा गा मस्त हो जाओ ना

आज मैं नाचूं ऐसा मन है
झूम के नाचूं ऐसा मन है
मोर सी नाचूं ऐसा मन है
ज़ोर से नाचूं ऐसा मन है
तुम संग नाचूं ऐसा मन है
आओ हम सब मिल कर नाचें
लय में थिरक-थिरक कर नाचें
झूम के नाचें मस्त हो नाचें

आज मेरा हंसने का मन है
ज़ोरों से हंसने का मन है
लगातार हंसने का मन है
तुम संग मिल हंसने का मन है
हां मेरा हंसने का मन है
आओ हम सब हंसे हंसाएं
बिना बात के हंसे हंसाएं
हंसते हंसते मस्त हो जाएं

आज मेरा उड़ने का मन है
पंछी बन उड़ने का मन है
बन पवन उड़ने का मन है
हां मेरा उड़ने का मन है
आओ ख्यालों में उड़ जाएं
पर्वत से ऊंचा उड़ जाएं
तारों से बतियां के आएं।

दो असरदार माध्यम

शिविर और कार्यशाला

सुहास कुमार

बातचीत करने, अनुभव बांटने, मुद्दे विशेष पर बहस व सोच-विचार आदि करने के लिए शिविर और कार्यशाला बहुत कारगर माध्यम हैं। इनमें बहुत कुछ सीखा जा सकता है। कार्यशाला से हम समझते हैं कोई काम सिखाने के बारे में होगी और शिविर में किसी विषय की जानकारी दी जाएगी। व्यवहार में जहां तक महिला आंदोलन की बात है दोनों का एक ही मतलब और मक़सद है।

किसी भी मुद्दे पर शिविर का आयोजन किया जा सकता है, जैसे स्वास्थ्य या कानूनी जानकारी, कर्जा मिलने और बैंकिंग की सुविधा, रोजगार के साधन विशेष, कला या कुशलता का प्रदर्शन व प्रशिक्षण।

सबको अपनी-अपनी बात कहने-सुनने का मौका देने के लिए जरूरी है कि समूह बहुत बड़ा न हो। शिविर या कार्यशाला में 20-25 की संख्या काफी है। समूह ज्यादा बड़ा हो तो प्रतिभागी दो-तीन समूहों में बंट सकते हैं।

जरूरी है कि ट्रेनिंग देने वाली और ट्रेनिंग ग्रहण करने वाली इतनी घुल-मिल जाएं कि यह महसूस न हो कि कुछ औरतें कम सक्रिय भाग ले रही हैं। शिविर जानकारी, जागरुकता और संगठन के उद्देश्य से भी हो सकता है।

कानूनी जानकारी शिविर

मदुराई (तमिलनाडु) में 'पाछी' ट्रस्ट गांवों में कानूनी जानकारी देने के लिए दो-दो दिन के शिविर लगाता है। शिविर का मक़सद है औरतों को आसान शब्दों में कानूनी जानकारी देना ताकि वे उसे काम में ला सकें। इसके लिए उनका संगठित होना भी जरूरी है।

शिविर में महिला संगठनों की औरतें आती हैं। उन्हीं गांवों में कानून शिविर लगाए जाते हैं जिनमें उनके स्वास्थ्य व विकास-संबंधी कार्यक्रम चल रहे हैं। शिविर में उन्हें पारिवारिक कानून, जमीन-संबंधी कानून, तलाक और विच्छेद संबंधी कानून और मजदूरी अधिनियम आदि की जानकारी दी जाती है।

शिविर में पहले उन्हें मूल भारतीय वैधानिक प्रणाली के बारे में बताया जाता है। यह प्रणाली कैसे विकसित हुई और कैसे काम करती है? फिर दहेज-प्रथा, स्त्रियों के खिलाफ़ जुर्म और अत्याचार के बारे में विस्तार से चर्चा होती है। कानूनों के अलावा चर्चा के अन्य विषय भी होते हैं, जैसे बाल विवाह का मनोवैज्ञानिक और सामाजिक असर, इस कुप्रथा को कैसे रोका जाए, कानून कैसे लागू किया जाए जिससे यह प्रथा खत्म की जा सके।

जमीन और श्रम-संबंधी कानूनों पर भी चर्चा होती है। किस तरह ठेकेदार और जमींदार औरतों की कानूनी अज्ञानता का फ़ायदा उठाते हैं। वास्तविक स्थिति क्या है और कैसे उसमें बदलाव लाया जा सकता है। इन सब पर जानदार बहस होती है। कानून मर्दों का पक्ष लेता है, आमतौर से यही धारणा है। औरतें कानून का उपयोग कर इसमें बदलाव ला सकती हैं। कानून ज्यादा सफलतापूर्वक लागू हों, इसके लिए इसकी जानकारी जनसाधारण को देना जरूरी है। शिविर में जानकारी देने के लिए जाने-माने और जन समर्पित जज व वकील बुलाए जाते हैं।

आपसी चर्चा

शिविर में खास केसों पर बातचीत होती है। किस तरह घर की चार दीवारी में बंद औरतों ने हिचक छोड़कर कानूनी लड़ाई लड़ी और इंसाफ पाया। इस चर्चा से औरतों में हिम्मत और अपने पर भरोसा बढ़ता है। कानून को आसान बनाकर समझाने के लिए चार्ट व नुक्कड़-नाटक की मदद ली जाती है। औरतों को सरकार की ओर से मिलने वाली कानूनी और मुफ्त कानूनी सहायता के बारे में बताया जाता है।

शिविर में भाग लेने के बाद औरतें अपने गांव वापिस जाकर अन्य औरतों को जानकारी देती हैं। इस तरह जानकारी काफी औरतों तक पहुंच जाती है। कानूनी पक्ष पर कई तरह के प्रोग्राम (नुमाइश, नाटक) किए जाते हैं। धीरे-धीरे औरतें जागृत हो रही हैं। उनका आत्मविश्वास बढ़ रहा है। वे अपने हकों के लिए संगठित हो रही हैं। शिविर में प्रशिक्षित औरतें मशाल बनकर अपने इलाकों में रोशनी फैला रही हैं।

विकास संबंधी कार्यशाला

पिछले साल बंगलौर में औरतों के विकास संबंधी एक कार्यशाला आयोजित की गई। इसमें आंध्रप्रदेश, बिहार, उड़ीसा व तमिलनाडु की 46 औरतों ने भाग लिया। आसानी के लिए उन्हें चार समूहों में बांटा गया।

कार्यशाला के मुख्य उद्देश्य थे—

1. देश के सामाजिक व राजनैतिक ढांचे के बारे में समझ और जागरुकता बढ़ाना और बताना कि किस तरह औरतों के जीवन पर असर पड़ता है।
2. विकास के आयाम।
3. चारों राज्यों में महिला कार्यकर्त्ताओं का जाल बिछाया जाए जिससे औरतों को विकास का लाभ मिल सके।
4. औरतों की एक टीम बनाई जाए जिसका काम लिंग-भेद संबंधी मुद्दों पर नजर रखना और उसे न होने देना हो।

स्त्रियां और विकास, महिला आंदोलन, महिलाएं और कानून, महिलाएं और स्वास्थ्य, महिलाएं और संचार के माध्यम, महिलाएं और धर्म आदि विषयों पर खुलकर चर्चा हुई।

एक दूसरे को जानने व समझने में उन्हें दो दिन लगे। फिर तो छोटे-छोटे समूह बनाकर गाना-बजाना, कहानी, गप्पें और चर्चाएं हुईं। गंभीर विषयों पर चर्चा के साथ-साथ यह सब भी चलता था जिससे वे तरोताज़ा महसूस करती थीं।

ज्वलंत मुद्दे

कार्यशाला के आखीर में सब प्रतिभागियों को कागज पर अपने-अपने विचार लिखने को कहा गया। उससे नीचे लिखी बातें उभरीं—

1. कानून के बारे में बुनियादी जानकारी देने की बहुत जरूरत है। औरतों को, खासकर ग्रामीण स्तर पर बहुत कम जानकारी है।
2. संचार माध्यमों, अखबारों, टी. वी., रेडियो आदि पर बातचीत शहरी ज्यादा होती है। गांव संबंधी अधिक होनी चाहिए।
3. स्वास्थ्य कार्यशालाएं ज्यादा होनी चाहिएं। यह ऐसा मुद्दा है जिससे अन्य सब मुद्दे जुड़े हैं। गांवों और शहरों में गरीब औरतों के लिए कार्य करने वाले स्वास्थ्य कार्यकर्त्ताओं को ट्रेनिंग स्वयंसेवी संस्थाएं दें।
4. स्त्रियों को संगठित करने के तरीकों की चर्चा की जाए।

5. मध्यवर्ग की बजाए निम्नवर्ग की समस्याओं पर ज्यादा चर्चा की जाए।
6. धर्म के बारे में चर्चा से काफी जानकारी मिली। इससे गांवों में अंध विश्वास और गलत विश्वासों को दूर करने में मदद मिलेगी।
7. कार्यशाला से औरतों ने अपनी ताकत को जाना।
8. अपने पर भरोसा बढ़ा है जिससे आगे का काम और ज्यादा उत्साह से हो सकेगा।
9. हमें और ज्यादा सीखने व जानने की उत्सुकता बढ़ी। काम करने की इच्छा भी बढ़ी।

कविता, नाटक आदि लिखने के लिए भी कार्यशाला की जा सकती हैं। कार्यशाला में लोग मिलजुल कर काम करते हैं, इससे काम रुचिकर और आसान हो जाता है। काम के अलावा आपस में संगठन की भावना का भी विकास होता है और बहनचारा बढ़ता है।

सबला संघ

सबला संघ, नई दिल्ली की सदस्याओं ने एक कार्यशाला में सुश्री आयन लाल की मदद से एक नाटक तैयार किया। नाटक का विषय और शीर्षक था "औरत और धर्म"। औरतें चाहे किसी भी धर्म की हों, उनका दर्जा पुरुषों से नीचा ही है। किसी भी धर्म ने उन्हें बराबरी का दर्जा नहीं दिया। रीति-रिवाज व मर्यादाएं औरतों पर ही लादी जाती हैं। धर्म के नाम पर झगड़े होते हैं जिसके नतीजे औरतें भुगतती हैं।

समूह की कई औरतें कार्यशाला में मिलकर बैठीं और एक के बाद एक लाइन जोड़ती गईं। इस तरह नाटक का जन्म हुआ। पूरे नाटक में कई मुद्दों को उठाया गया जैसे औरत-मर्द का दर्जा बराबरी का न होना, लड़के-लड़की के पालन-पोषण में अंतर, अंधविश्वास, रीति-रिवाजों में बेकार के खर्च, विधवाओं पर रोकटोक आदि।

आखीर में स्त्रियां सवाल करती हैं कि उन्हें क्यों दबाया जाता है? कभी धर्म तो कभी समाज, कभी राजनीति तो कभी घर के बड़े-बूढ़े उन्हें दबाते रहे हैं। क्यों? □

नाटक–एक मनोरंजक माध्यम

अपनी बात, संदेश दूर तक पहुंचाने के लिए पत्र-पत्रिका, गीत, नृत्य, नाटक, पोस्टर, कठपुतली के नाच आदि किसी भी माध्यम का इस्तेमाल कर सकते हैं। नाटक द्वारा बात रोचक और प्रभावशाली ढंग से कैसे कही जा सकती है। इसका एक उदाहरण देखें।

हमारे पड़ोसी देश पाकिस्तान में कानून काफी सख्त हैं। महिलाओं को कानून का सहारा लेकर और भी ज्यादा दबाया जाता है। कुछ समय पहले वहां की सरकार ने गवाही संबंधी एक नए कानून को लागू करने का प्रस्ताव रखा। प्रस्ताव था कि दो महिलाओं की गवाही एक पुरुष की गवाही के बराबर होगी, इससे महिलाएं काफी क्रोधित एवं उत्तेजित हुई।

अब खुलेआम तो वे कुछ कह नहीं सकती थीं। उन्होंने एक छोटी नाटिका तैयार की। महिला मंच, लाहौर ने एक मेले का आयोजन किया। मेले के लिए कोई बंधन नहीं है। उन्हें इसके लिए आज्ञा मिल गई। सैकड़ों की संख्या में महिलाएं मेले में आईं। उन्होंने गाने गाए और आपस में तरह-तरह की बातें कीं। वहीं पर उन्होंने इस छोटे नाटक का मंचन किया जो नए गवाही के कानून से संबंधित था।

नाटक के तीन पात्र थे। एक महिला पत्रकार और दो पुलिस-महिलाएं।

एक पुलिस-महिला एक मोटर साइकिल चालक (पुरुष) को फुटपाथ पर साइकिल चलाने से रोकती है। वह पुरुष उनकी सुनी-अनसुनी कर देता है और रुकता नहीं है। महिला पत्रकार पुलिस-महिला से पूछती है—"यह बताओ कि गवाही के नए कानून का असर तुम्हारे ऊपर क्या पड़ा है?"

पुलिस-महिला—यह तो बिल्कुल साफ है। जब हम कोर्ट में कोई केस दर्ज कराते हैं तो जज हमारी आधी बात का विश्वास करता है। अगर केस हत्या का है तो जज हमारी आधी बात पर विश्वास कर उसे चोरी की सजा सुना देता है। अगर किसी के खिलाफ दफ़ा 420 का मुकदमा है तो उसे दफ़ा 210 के तहत सजा दी जाती है। अगर हम किसी को चोरी के इल्जाम में गिरफ्तार करते हैं तो जज उसे सिर्फ डांट-फटकार कर रिहा कर देता है।

पत्रकार—कुछ और भी फर्क पड़ता है ?

पुलिस-महिला—हां हां, बहुत फर्क पड़ता है। अब सारी चीज़ रुतबे के हिसाब से होती है। हमारा रुतबा तो आधा ही रह गया है। जब कपड़े बांटे जाते हैं तो इसे (साथी की ओर इशारा करती है) पैंट मिलती है, हमें कमीज़। इसे टोपी मिलती है तो हमें पेटी। इसे जूता मिलता है तो हमें मोज़ा। इसे बंदूक मिलती है और हमें गोलियां। इसलिए जब मुठभेड़ होती है हम महिलाएं मारी जाती हैं—देश के लिए।

पत्रकार—क्या, मारी जाती हैं ? अखबारों में तो कभी नहीं पढ़ा कि मुठभेड़ में महिला पुलिस मारी गई।

पुलिस-महिला—देखो, इसे दूसरी तरह से रपट किया जाता है। अखबार में छपता है दो पुलिस-महिलाओं ने आत्महत्या की। असल में हमारे दुश्मन के पास पिस्तौल मय गोली के होती है और हमारे पास या तो पिस्तौल या गोली, तो वह आत्महत्या ही हुई न।

पत्रकार—फिर ?

पुलिस-महिला—फिर क्या, अपने पद के हिसाब से सब काम होता है। आदमियों के क्रियाकर्म 40 दिन बाद होते हैं, हमारे 20 दिन बाद ही निपटा दिए जाते हैं।

पत्रकार—हमने सुना है कि प्रसूति के लिए अब आधी-छुट्टियां ही मिला करेंगी। अब यह तो कोई ऐसी चीज़ नहीं कि दो औरतें मिलकर कर सकेंगी।

पुलिस-महिला—यह तो आप सोचती हैं। उनका गणित दूसरा ही है। वह कहते हैं कि एक औरत 9 महीने में बच्चा पैदा करती है तो 9 औरतें एक महीने में एक बच्चा पैदा कर सकती हैं। तब प्रसूति के लिए किसी लंबी छुट्टी की ज़रूरत नहीं है। आकस्मिक छुट्टी से ही काम चल जाएगा।

इसी तरह से जोड़-जोड़ कर नाटक चलता रहा। औरतें इसे देखकर हंसी से लोटपोट हो रही थीं। उनको गुस्सा भी बहुत आ रहा था।

यह नाटक एक उत्तम उदाहरण है कि कैसे अपनी बात प्रभावशाली ढंग से कही जा सकती है। उस कानून की कैसी खिल्ली उड़ाई गई है। यह लोगों को सोचने पर मजबूर करता है। यह नाटक किसी भी जगह किया जा सकता है। उसको थोड़ा बहुत बदला भी जा सकता है। ज़रूरत हो तो बीच में रोका भी जा सकता है। इस तरह के नाटकों द्वारा महिला मंच ने बहस छेड़ी। औरतों को इकट्ठा किया। उनके हस्ताक्षर जमा करके अर्ज़ी दी। इस सब शोर-शराबे का असर हुआ और सरकार ने उस बिल में कुछ सुधार किए।

इसी तरह से किसी भी मुद्दे को लेकर नाटक बनाया जा सकता है। घर में पति द्वारा पत्नी की पिटाई, सास ननदों द्वारा तंग किया जाना, काम के स्थानों पर छेड़छाड़-बलात्कार, जबर्दस्ती यौन-संबंध स्थापित करने की कोशिश, काम के लिए बराबर मज़दूरी न मिलना, सूखा, जंगलों की कटाई, पानी की कमी, शिक्षा, स्वास्थ्य आदि।

कई ग्रामीण और शहरी झुग्गी बस्ती वाले इलाकों में इस पर सक्रिय काम हो रहा है। इसमें बिना पढ़ी-लिखी औरतें भी बराबरी से हिस्सा ले सकती हैं। □

अनपढ़ औरतों ने वीडियो फिल्म बनाना सीखा

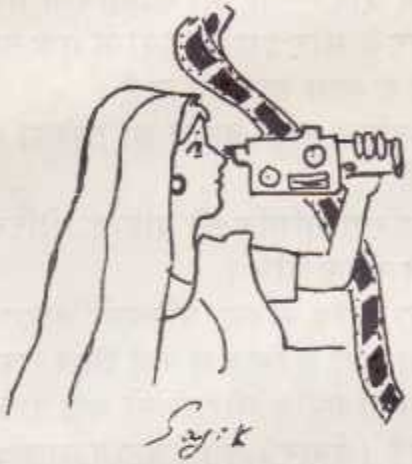

गुजरात 'सेवा' संस्था औरतों को संगठित कर उनके विकास के बहुत तरह के कामों में लगी है, जैसे स्वास्थ्य सेवाएं दिलाने, कर्ज व कानूनी सहायता दिलाना और रोजगार की ट्रेनिंग दिलाना आदि।

1984 में संस्था ने वीडियो फिल्म बनाने की तीन हफ्ते की कार्यशाला आयोजित की जिसमें फेरी लगाने वाली और अगरबत्ती बनाने वाली औरतों से लेकर खेतिहर मज़दूरिनों ने भाग लिया। भाग लेने वालों में एक युवा छात्रा ज्योति जुमानी को 'सेवा' की वीडियो इकाई के संचालन का काम सौंपा गया।

ज्योतिबेन का मानना है कि जब औरतें वीडियो फिल्म बनाएंगी तब उनकी बात दूर-दूर तक पहुंचेगी। यह बहुत असरदार माध्यम है। इससे वे अपनी आवाज उठा सकेंगी और नीति बनाने वालों तक पहुंच सकेंगी।

ज्योतिबेन अपने अनुभव से बताती हैं कि औरतों की विकास प्रक्रिया में वीडियो महत्वपूर्ण योग दे सकता है।

ट्रेनिंग

चूंकि ज्यादातर औरतें अनपढ़ थीं, उन्हें अलग-अलग प्रशिक्षण देने की जरूरत पड़ी। समझ, शिक्षा का स्तर, याद रखने की क्षमता और रुचि अलग-अलग थी। औरतों को शुरू में यही समझ नहीं आता था कि छोटे से पर्दे पर इतनी सब औरतें कैसे फिट हो जाएंगी।

ज्योतिबेन के लिए भी यह नया अनुभव था। सीखने-सिखाने की लंबी क्रिया चली जिसमें मेहनत, अभ्यास और धैर्य दोनों की जरूरत थी। औरतों को फोटो खींचना सिखाने के अलावा अनेक बातें सिखानी पड़ीं। समय में काम करना, ज़िम्मेदारी से करना और कामों की जवाबदेही आदि की ट्रेनिंग देनी पड़ी। अभ्यास के बहुत टेप बनाए गए, पर थोड़े ही समय में औरतें इस जटिल तकनीक को सीख गईं। उनका पढ़ा-लिखा न होना आड़े नहीं आया। उनमें धीरे-धीरे यह विश्वास जगा कि वे फोटो खींच सकती हैं, वीडियो टेप चला सकती हैं। अब प्ले, बी. एन. सी., 14 पिन कैमरा केबिल, रिवाइंड, फास्ट फारवर्ड, इन, आउट माइक्रोफोन आदि शब्द उनकी शब्दावली का हिस्सा बन गए हैं।

वीडियो बहुत से बटनों को दबाकर चलाया जाता है जिनका नाम अंग्रेज़ी में लिखा होता है। औरतों को अंग्रेज़ी के शब्दों को पढ़ना और उनका मतलब सिखाना जरूरी था। इसमें समय लगा, पर एक बार सीख जाने पर औरतों में भरोसा पैदा हुआ और वे उसे बिना कठिनाई चलाने लगीं।

जब वीडियो फिल्म दूर बसे गांवों में ले जाई गई तब लोगों की ऐसी भीड़ जुटी जैसे वह चुंबक हो। ज्योतिबेन बताती हैं कि शुरू में तो औरतें चुपचाप देखती रहती हैं, पर जल्दी ही वे उसमें सक्रिय भाग लेने लगती हैं। भीड़ में स्त्री-पुरुष, बच्चे सब शामिल होते हैं। वे जल्दी फिल्म के पात्रों के साथ जुड़ जाते हैं क्योंकि उन्हें वे अपने जैसे ही लगते हैं। कई लोगों ने अपने जीवन-संबंधी फिल्म बनाने को कहा। ज्योतिबेन कहती हैं कि लोगों से जान-पहचान बढ़ाने में एक महीना लग जाता है जबकि फिल्म की शूटिंग में सिर्फ एक दिन लगता है।

फिल्म बनाना

ज्योतिबेन और उनकी टीम जब फिल्म बनाती हैं तब वहां जुटी भारी भीड़ को वे काम में शामिल कर लेती हैं। किसी को लाइट पकड़ने और किसी को माइक पकड़ने का काम सौंप देती हैं।
उनकी कोशिश रहती है कि फिल्मी उपकरण को औरतें यह न समझें कि वह नाजुक है और वे उसे छू नहीं सकतीं या छूने से वह खराब हो जाएगा। ज्योतिबेन का विश्वास है कि औरतों के हाथों में वीडियो का माध्यम आ जाने से वे अपने मुद्दों को स्थानीय, राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर उठा सकेंगी।

जुबानी या पत्रिका में लिखकर बात कहने का उतना असर नहीं होता जितना कि टी.वी. या फिल्म दिखाकर। टी. वी. में अपनी जैसी औरतों को देखकर उनमें नई जागरुकता, नई समझ और नई ताकत जागती है और उन्हें लगता है कि सब औरतों की समस्याएं एक जैसी हैं। उनमें संगठित होने की इच्छा बढ़ती है और बहनचारा बढ़ता है। तब वह समस्या मुद्दा बन जाती है। वह व्यक्तिगत स्तर से उठकर सामाजिक और राजनैतिक रूप ले लेती है, जिसके समाधान के लिए सामाजिक और राजनैतिक स्तर पर काम जरूरी है।

जितनी ज्यादा औरतें वीडियो इस्तेमाल करना सीखेंगी (उनके जीवन में तो बदलाव आएगा ही) उतना ही समाज के ठेकेदारों और राजनैतिक नेताओं के उदासीन रवैये को भी बदल सकेंगी।

'सेवा' वीडियो फिल्मों की सूची

1. मानेक चौक—यह अहमदाबाद में सब्जी का बाजार है और इस वीडियो में एक सब्जी बेचने वाली के साथ साक्षात्कार है।
2. धुआं-रहित चूल्हा बनाने का तरीका बताया गया है।
3. सहकारिता समिति की वार्षिक मीटिंग।
4. जीवन रक्षक घोल।
5. महिला विश्व बैंकिंग, पश्चिमी भारत—इसमें बताया गया है कि कैसे कर्ज मिल सकता है। यह संस्था गरीब औरतों को कर्ज देती है।
6. रेडीमेड (तैयार) कपड़े बनाने वालों का जुलूस। 5,000 कामगरों ने पुलिस स्टेशनों और नगर निगम के दफ्तर के सामने पुलिस अत्याचार के खिलाफ और लाइसेंस की मांग के लिए जुलूस निकाला।
7. मुस्तकम बीबी—नौ साल से कपड़े सींकर बेचने वाली औरत के साथ साक्षात्कार है जो अपने काम के लंबे घंटों, कम आमदनी, व्यापारियों द्वारा कपड़ों में नुक्स निकाल कर उन्हें न लेने के बारे में असलियत बताती है।
   फिल्म हिंदी में है।
8. 'सेवा' द्वारा संचालित सहकारी समितियों में कपड़ा बुनने, बेंत व लकड़ी की चीजें बनाने व ब्लाक की छपाई-रंगाई के बारे में है।
9. फेरी लगाने वालों का जुलूस।
10. महिला बीड़ी कामगर।
11. डेरी सहकारिता।
12. सोलर कुकर।
13. कामगर बच्चे।
14. युवा मारवाड़ी लड़कियां—अनपढ़ मारवाड़ी लड़कियों के बारे में जिन्हें घर से बाहर नहीं निकलने दिया जाता। उनके साथ साक्षात्कार।
15. सय्यो—'बोहरा मुसलमानों' में एक अजीब सा

रिवाज है। काफी छोटी उम्र की लड़कियों का समूह बना दिया जाता है जो बूढ़ी होने तक साथ रहती हैं। उनकी शादी नहीं होती।
उस समूह के साक्षात्कार पर फिल्म बनाई गई है। फिल्म अंग्रेज़ी में है।

16. टीकों पर।
17. इंदिरा जयसिंह वकील के साथ साक्षात्कार। सब्जी बेचने वाली और घर में रहकर रोजगार चलाने वाली औरतों के संबंध में कानूनी जानकारी।
18. सेवा बैंक।

सभी फिल्में रंगीन हैं। ज्यादातर गुजराती में हैं, पर अंग्रेज़ी में भी बताया गया है। मुस्तकम बीवी फिल्म हिंदी में है।

वीडियो फिल्में मिलने का पता—

वीडियो सेवा
सेवा रिसेप्शन सेंटर
विक्टोरिया गार्डन के सामने
अहमदाबाद-380001 (गुजरात)
फोन—390577, 290329 □

एक अंधी लड़की से बलात्कार: कुछ शर्मनाक मुद्दे

तारा आहलूवालिया

गांव बावलास, पंचायत समिति मांडल, जिला भीलवाड़ा (राजस्थान)।

घटना लगभग 10-11 महीने पहले घटी। अपराधी गांव का बहुत संपन्न और प्रभावशाली व्यक्ति भंवरलाल जाट है।

पीड़िता—श्रीमती नंदू देवी कुमावत, उम्र 25-27 साल। एक साल की उम्र में ही वह अंधी हो गई थी। 6 वर्ष पहले खान की बीमारी लग जाने से उसका पति मर गया था। वह अभ्रक की खान में काम करता था।

नंदू अंधी होने पर भी घर व खेती का हर काम कर लेती है। सिर्फ बीनना या चुगना नहीं कर पाती।

ससुराल की आर्थिक हालत काफी कमजोर है, इसलिए नंदू मज़दूरी करती थी।

कुछ महीने पहले नंदू घर में अकेली थी। रात को 8 बजे भंवरलाल जाट ने चाकू की नोक पर उसके साथ बलात्कार किया। इससे नंदू को गर्भ रह गया। ससुराल वालों ने उसे बदचलन कह कर घर से निकाल दिया। नंदू पूरे गांव में लावारिस बनी भटकती रही। कोई उसे रोटी दे देता तो वह अपना पेट भर लेती। ज्यों-ज्यों बच्चा होने का समय पास आ रहा था, नंदू और गांव के कुछ सज्जन लोग बहुत परेशान थे। इस काम की ज़िम्मेदारी कौन ले, यह सवाल उनके सामने था।

नंदू के पीहर वालों ने उसकी खबर लेने की भी जरूरत नहीं समझी। धीरे-धीरे यह खबर सरकारी अधिकारियों तक पहुंची। जिला महिला विकास निदेशक ने दो प्रचेताओं को जानकारी लेने भेजा। जब सरकारी कार्यकर्त्ताओं ने नंदू के बारे में जानकारी चाही तो गांववालों ने रातों-रात फैसला कर नंदू को गढीला फार्म गांव में 'नाते' रखा दिया, यानी दूसरी शादी कर दी।

हम लोग दो-तीन दिन पहले नंदू के इस 'नाते के गांव में' उससे मिलने गए।

कमज़ोर, बेबस औरत

नंदू और गांव के लोगों से बात करके ये तथ्य उभरे—घर की आर्थिक स्थिति कमज़ोर है। नंदू के पति का मानसिक विकास ठीक नहीं हुआ है। गांव की भाषा में वह भोला है। नंदू अपने पति की तीसरी पत्नी है। पहली दोनों पत्नियां उसे छोड़कर अन्य पुरुषों के साथ चली गईं क्योंकि वह मानसिक रूप से ठीक नहीं है। नंदू का झगड़ा अभी पहली ससुराल वालों से चल रहा है। इनकी जाति (कुमावतों) में झगड़ा निपटाने में 10-20 हजार रु. लग जाते हैं। नंदू चूंकि अंधी है, बलात्कार की शिकार है, उसकी इज्जत बिगड़ गई है, इसलिए उसका झगड़ा 300-350 रु० में निबट जाएगा।

नंदू अपने साथ हुई दुर्घटना के बारे में बताना नहीं चाहती थी, पर जब उसे पता चला कि हम इस बारे में जानते हैं तब उसने बात की। उसने बताया कि इस नये 'नाते' के घर में उसे कोई परेशानी नहीं है। उसे अपनी छः साल की बच्ची बहुत याद आती है। उसके देवरों ने उसे अपने पास रख लिया था और उससे बिना पूछे उसकी शादी भी कर दी थी। 6 साल की लड़की अब विधवा है। उसने यह भी बताया कि भंवरलाल जाट ने पहले भी गांव की एक लड़की से बलात्कार किया था जिसने आत्महत्या कर ली थी।

'नाते' आने से उसे अच्छा लगा है, क्योंकि उसका ठिकाना बन गया है और वह अपने को सुरक्षित मानने लगी है। वह कोशिश कर रही है कि उसकी बेटी उसके पास आ जाए। मौजूदा ससुराल वालों को इसमें कोई आपत्ति नहीं है। नाते आने के बाद नंदू के लड़का पैदा हुआ जो 5-7 दिन जिंदा रहकर टिटेनस से मर गया।

सब गांववालों के सामने नंदू ने भंवरलाल जाट का नाम लिया, पर गांव में उसके खिलाफ आवाज़ उठाने को कोई तैयार नहीं है।

कुछ सवाल

अंधी या पागल या कमज़ोर व लाचार औरत के साथ कोई भी बलात्कार कर सकता है। लोग उसी से सवाल करते हैं—तू तो अंधी है, तुझे क्या पता कौन था?

इसी जिले के कोटड़ी गांव में एक व्यक्ति रात को एक कुतिया को पेड़ से बांधकर उसके साथ संभोग कर रहा था। गांव के किसी व्यक्ति ने उसे देख लिया और दौड़कर पकड़ लिया। दूसरे दिन गांववालों के सामने मीटिंग में उससे सवाल किया गया—"तू कुतिया के साथ ऐसा कर सकता है तो बहू-बेटियों को क्या छोड़ेगा?" उसे दंडित किया गया।

शर्मनाक रुख

गांववाले कुतिया पर सवाल उठा सकते हैं तो एक औरत के साथ हुए बलात्कार पर क्यों नहीं? क्या प्रभावशाली व्यक्ति के सामने औरत की इज्जत कुतिया से भी बदतर है?

इस मुद्दे पर एक बैठक में हमने चर्चा की और तय किया कि बावलास जाकर मीटिंग करनी चाहिए, चाहे हम सीधे-सीधे सवाल न भी कर सकें। बलात्कार से संबंधित कोई फिल्म दिखाएं जिसमें गांववालों की ताकत दर्शाई गई हो।

हमें आशा है कि आप शीघ्र इस मुद्दे पर अपने विचार लिखकर हमें अपने विचारों से अवगत कराएंगे।

इस मुद्दे पर 'सबला' के पाठकों के विचारों का स्वागत है। □

आप से हम तक

'सबला' पत्रिका के चार अंक हमें प्राप्त हो गए हैं। सभी अंक हमें बहुत ही पसंद आए। ग्रामीण क्षेत्र की महिलाओं के दैनिक जीवन से संबंधित सभी पहलुओं को आपने छुआ है। स्वास्थ्य, समय एवं साधन बचाने के उपाय, कानून संबंधी जानकारी, सफलता की कहानी सभी का चित्रण है। खासकर चित्रों के माध्यम से बात को सरलतम बनाया गया है। उन्नत चूल्हे, हैंडपंप, सहज बन पाए हैं। सामाजिक कुरीतियों को दूर करने हेतु भी उचित मार्गदर्शन दिया गया है।

कुछ लघु उद्योगों के बारे में भी आपने बताया है जिसके द्वारा महिलाएं घर बैठे अपने परिवार की आय बढ़ा सकती हैं। आपका प्रयास प्रशंसनीय है। हम आपकी सफलता की कामना करते हैं।

श्रीमती विभा नरगुन्दे
कार्यक्रम सहायक
राज्य संसाधन केन्द्र, इन्दौर

संपादकीय में आपने वर्षों से जमी धारणा का खंडन कर बेहद स्तुत्य काम किया है। संपूर्ण रचनाओं के चयन में बरती गई सावधानियों से रोचक, बोधगम्य एवं पठनीय के साथ-साथ संग्रहणीय भी है। पत्रिका नियमित रूप से मिलती रहे इसके लिए कोई दिशा-निर्देश नहीं है। इसका शुल्क स्पष्ट करें। मैं भी अपनी रचनाएं, विचार आदि भेजूंगी। कविताएं बहुत ही अच्छी लगी हैं।

वीणा सोनी
बावड़िया, देवस

आपकी छापी हुई जानकारी से मैं काफी प्रभावित हुई। मैं ग्राम सेवा में सखी कार्य करती हूं। महिलाओं की खोई हुई ताकत को पुनर्जीवित करने का मैं भरसक प्रयास कर रही हूं। महिलाओं के महिला मंगल दल बनाकर उनको पुरुषों के बराबर समान अधिकारों के लिए उनमें आत्मविश्वास जागृत कर रही हूं। साथ ही नशाबंदी, समाज सुधार, ऊंच-नीच, छुआ-छूत, एक पुरुष का दो शादी करना आदि पर सख्त रोक लगाने की भी कोशिश जारी है। कृपया 'सबला' द्वैमासिक अवश्य भेजें ताकि मैं महिला संगठनों में जागृति पैदा कर सकूं।

पयाली देबी
बासर, टिहरी गढ़वाल

हमें 'सबला' द्विमासिक पत्रिका का प्रथम अंक जून-जुलाई–90 का प्राप्त हुआ। बहुत पसंद आया। हमारी महिला मंडल की सदस्याओं ने रुचिपूर्वक पढ़ा व पसंद किया। ज्ञानवर्धक, रोचक, मनोरंजक, सुसज्जित 'सबला' का प्रकाशन नारी के लिए विश्वास का प्रतीक है। 'सबला' के माध्यम से इसे जारी रखने का कष्ट करें। हमारी ग्रामीण महिलाओं को 'सबला' की ज्ञानवर्धक, शिक्षाप्रद कहानियां, लेख पसंद आए। आशा है 'सबला' की नारी जागृति, चेतना, विकास हमें निरंतर प्राप्त कराएंगे।

शिवकन्या गुप्ता
अलीराजपुर

लखनऊ यूनिसेफ कार्यालय से 'सबला' की एक प्रति नमूनार्थ मिली। अच्छी लगी, प्रयास के लिए साधुवाद।

बालिका वर्ष के संदर्भ में पत्रिका की विषय वस्तु हमारी पत्रिका 'बाल दर्शन' के सर्वथा अनुकूल लगी। बालिका के सामाजिक अवमूल्यन को 'हमारी बात' लेख—'हमारी बेटियां', 'लड़कियों का संकुचित संसार', 'अपनी बेटियां', 'बेटी को भावी जीवन के लिए तैयार करें', नई पौध, कविताएं—देश की बेटियां, गुड्डो का सपना, रपट—'लड़की का दर्जा सुधारने में आपका योग', कहानी—'लड़की' तथा कार्टून 'गुड्डो की बाधा दौड़' सभी सामग्री सामयिक और विचारोत्तेजक है। सफल संपादन के लिए साधुवाद।

मानवती आर्या
कानपुर

हमारी संस्था का काम पूर्ण रूपेण ग्रामीण एवं पिछड़े हुए क्षेत्र में है। उस क्षेत्र के लिए निस्संदेह 'सबला' एक मार्गदर्शक पत्रिका है। साथ में आपके सहयोग मंडल को भी धन्यवाद। आशा है आप पत्रिका को और अधिक उपयोगी बनाने में प्रयासरत रहेंगे।

हमारी संस्था गत पांच वर्षों से ग्रामीण एवं पिछड़े क्षेत्रों में महिला एवं बच्चों के विकास के लिए विभिन्न कार्यक्रमों का संचालन कर रही है। संस्था के दस विद्यालय भी हैं। इनमें निर्धन बच्चों को निशुल्क शिक्षा, पुस्तक, कापी, वस्त्र, भोजन भी दिए जाते हैं। कृपया 'सबला' पत्रिका हमारे कार्यालय भेजें क्योंकि यह अत्यंत उपयोगी है।

सोम प्रकाश
सहारनपुर

आपके द्वारा प्रकाशित और प्रसारित पत्रिका 'सबला' जिसमें स्वास्थ्य, महिलाओं तथा बच्चों के बारे में जानकारी रहती है ग्रामीण क्षेत्रों में जानकारी बढ़ाने का काम करती है। इससे महिलाओं और बच्चों को स्वस्थ रहने में काफी सहायता मिली है। आप से अनुरोध है कि आप ग्रामीण अंचलों व महिलाओं की सुविधा हेतु स्वास्थ्य जानकारी कराते रहें।

संतोष कुमार महंत
रानीपुरा, जिला—धार (म०प्र०)

'सबला' महिलाओं के लिए एकमात्र बढ़िया पत्रिका है। इसके बाद हमें 'समाज कल्याण' पत्रिका अच्छी लगी। ये दो पत्रिकाएं हमारी समस्याओं को खूब समझती हैं और उन्हीं पर हर महीने लिखती हैं। आपको हम क्या राय दे सकते हैं। आपके अनुभव से हम काफी प्रभावित हैं। जैसा भी आप लिख रही हैं ऐसा ही चालू रखें। बहुत-बहुत धन्यवाद। 'सबला' हमारी असली खुराक है। इसे बंद न करें। हम इसकी प्रतीक्षा भूखे भिखारी की तरह करते हैं। कृपा कर इस संस्थान का पूरा परिचय-विधान देने की कृपा करें।

बहन भागीरथी
लक्ष्मी आश्रम कौसानी,

'सबला' के खुले विचार, स्पष्ट लेख हर व्यक्ति के सामने एक प्रश्नवाचक चिह्न छोड़ते हैं जिसका उत्तर वही व्यक्ति है। जन-शिक्षण निलयम पर 'सबला' पुस्तक अति आवश्यक है। पुरुष तथा महिला प्रौढ़ शिक्षा केन्द्रों पर हम 'सबला' की बातें, विचार खुले रूप से पेश करते हैं तथा उन पर विस्तृत विचार विमर्श करते हैं। महिला जागृति में 'सबला' एक महत्वपूर्ण पत्रिका सिद्ध हो रही है, तथा होगी। आप इस पुस्तक में कुछ ऐसे लेख सम्मिलित कीजिए जिससे पुरुषों को अपनी उन जिम्मेदारियों का अहसास हो जिसे वे भूल चुके हैं। अंत में मैं आपको बार बार धन्यवाद देता हूं कि समय की जरूरत को ध्यान में रखकर इस पुस्तक को तैयार किया है तथा भविष्य में करते रहेंगे।

किशन गोपाल सोनी
जन-शिक्षण निलियम्
हिंगोनिया, अजमेर

नफरत फैला रहे हैं ये मजहब के नाम पर
सत्ता के भूखे लोगों से मजहब बचाइए

—कमला भसीन

डाल पे बैठी मैना
लगती है प्यारी है ना

उसकी चहक, उसकी महक
खो न जाए कहीं ?
कुछ करो यत्तन
कुछ करो जतन ।

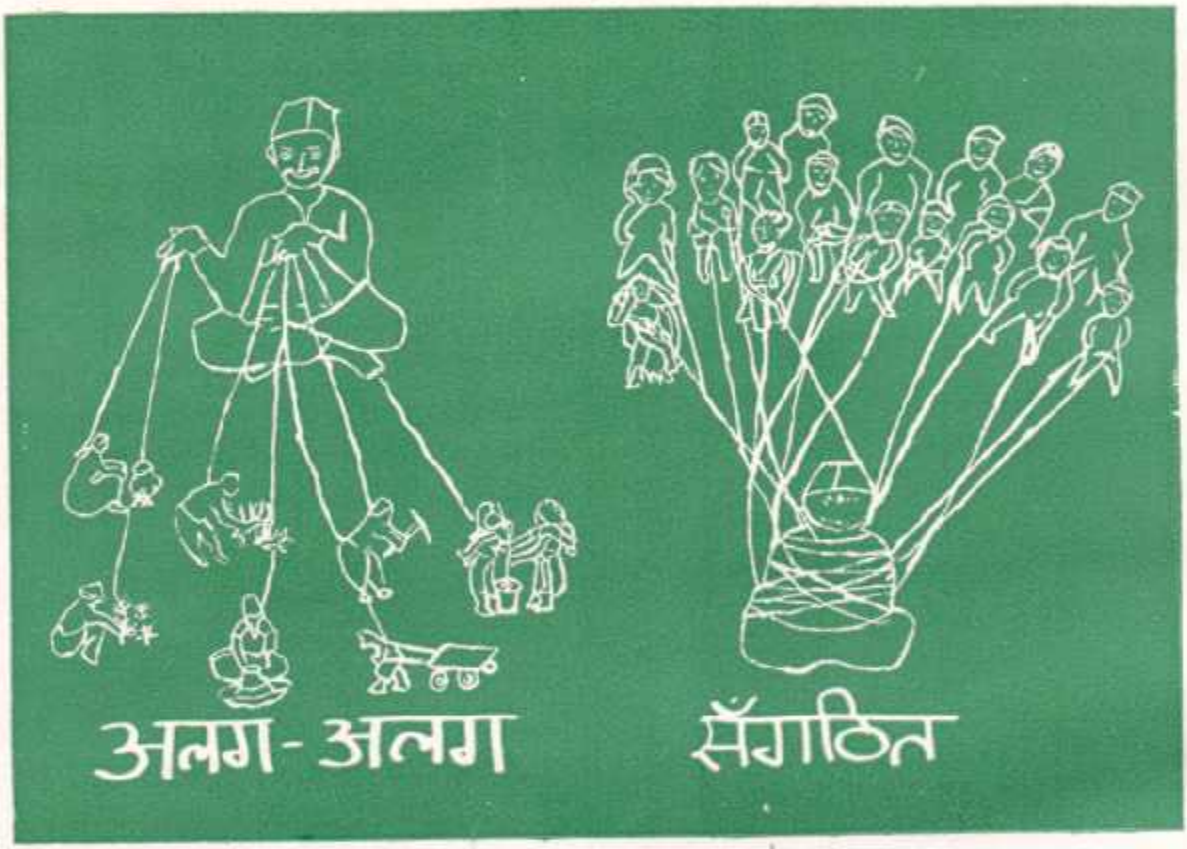
अलग-अलग
सँगठित